उदीयमान वैज्ञानिक बनाने के अनोखे अभियान की रजत जयंती

चंदर मोहन

राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस (एनसीएससी) देशभर के 10 से लेकर 17 वर्ष आयु वर्ग के विद्यार्थियों के लिए आयोजित की जाने वाली भारत सरकार की एक महत्वाकांक्षी गतिविधि है। इस कार्यक्रम की शुरुआत साल 1993 में की गयी थी। इसका उद्देश्य था युवा वैज्ञानिकों को एक ऐसा मंच प्रदान किया जाए जहां विज्ञान विधि का प्रयोग कर उनके मन में उपजी स्वाभाविक जिज्ञासाओं के समाधान प्रयोग और गतिविधियों के माध्यम से तलाशे जाएं। एनसीएससी बच्चों के भीतर वैज्ञानिक मनोवृत्ति और ज्ञान को इस्तेमाल करने का एक अनोखा अवसर प्रदान कर रहा है। यह कार्यक्रम बच्चों को उनके ज्ञान, कौशल और वैज्ञानिक मनोवृत्ति का उपयोग करने का एक अनोखा अवसर कराता है जिससे वे हैंड्स आन परियोजनाएं बनाएं तथा उनमें सृजनशीलता एव नवाचार की प्रवृत्ति विकसत हो सके।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद (एनसीएसटीसी), विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) के इस प्रतिष्ठित कार्यक्रम सीएससी का मुख्य मकसद विज्ञान को जानने के मार्ग में बच्चों के भीतर वैज्ञानिक मनोवृत्ति विकसित करने की प्रक्रिया में उनके आस–पास मौजूद समस्याओं को समझने और उनके व्यावहारिक समाधान ढूंढने को प्रोत्साहित करता है। इसके मूलभूत सिद्धांत हैं विज्ञान विधि अर्थात प्रेक्षण, आंकड़ों के संग्रहण, प्रयोग, विश्लेषण और अंत में निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रक्रिया को जीवन में उतारना।

हर साल जिला स्तर पर यह कार्यक्रम प्रारम्भ होता है, उसके बाद राज्य स्तर पर और फिर अंत में 27 से 31 दिसंबर के दौरान राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस आयोजित किया जाता है। जिला और राज्य स्तरों पर विस्तृत समीक्षा के बाद करीब 700 बच्चे इस पांच दिवसीय कार्यक्रम और रोचक विज्ञान गतिविधियों में शामिल होते हैं। यह कार्यक्रम कौतूहलपूर्ण प्रेक्षण, धैर्ययुक्त सवाल उठाने, मॉडल बनाने, माडल के आधार पर समाधान का पूर्वानुमान करने प्रयोग द्वारा अनेक संभव विकल्पों पर काम करने और एक सुसंगत समाधान पर पहुंचने, फील्ड वर्क, अनुसंधान तथा नवाचारी विचारों सहित बच्चों में खोजबीन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। यह कार्यक्रम प्रतिभागियों को उनकी मातृभाषा में अनेक पहलुओं पर सवाल करने तथा उनके निष्कर्षों को अभिव्यक्त करने के लिए भी प्रेरित करता है।

सीएससी के इस त्रिस्तरीय कार्यक्रम में प्रत्येक वर्ष लगभग पांच लाख विद्यार्थी हिस्सा लेते हैं और परियोजनाओं में करीब एक लाख शिक्षक विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हैं। स्कूल स्तर पर शोध की संस्कृति का विकास करने में इस कार्यक्रम के विषय और कार्यपद्धति विद्यार्थियों के लिए मददगार साबित होते हैं। राज्य के विद्यालय बोर्ड से आरंभ होकर यह कार्यक्रम देश में केंद्रीय विद्यालय और जवाहर नवोदय विद्यालय में आयोजित किया जाता है। विगत कुछ वर्षों से सार्क (SAARC) और आशियान (ASEAN) देशों के विद्यार्थी तथा शिक्षक भी इसमें हिस्सा ले रहे हैं। एनसीएससी में विद्यार्थी अंग्रेजी और हिंदी के अलावा अब अपनी मातृभाषा में भी अपनी परियोजनाओं को प्रस्तुत कर सकते हैं। पहले इसे केवल अंग्रेजी और हिंदी में ही प्रस्तुत किया जाता था। एनसीएसी के 25 वर्षों की यात्रा के दौरान अभी तक लगभग 13 केंद्रीय विषय वस्तुओं पर कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं जिनमें शामिल हैं पर्यावरण, पोषण, स्वच्छ भारत, जल संसाधन, जैवविविधता, भूमि संसाधन, ऊर्जा, मौसम और जलवायु आदि।

राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस 27 से 31 दिसंबर 2017 को गांधीनगर, गुजरात में आयोजित हुआ जो इस वार्षिक कार्यक्रम का रजत जयंती समारोह था। इस समारोह की मुख्य विषयवस्तु थी ''दीर्घकालिक विकास के लिए विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचारः दिव्यांग जनों की सुलभता के विशेष संदर्भ में''। डीएसटी द्वारा साइंस सिटी में इस कार्यक्रम का आयोजन गुजरात विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (गुजकास्ट) और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, गुजरात सरकार के माध्यम से आयोजित किया गया था।

आइए हम सभी वैज्ञानिक मनोवृत्ति के मजबूत आधार वाले भारत का निर्माण करने के लिए अपने आस–पास मौजूद प्रत्येक बच्चे को भावी वैज्ञानिक बनाने हेतु इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम में भागीदार बनें।

ई–मेलः chander.m@nic.in

(अनुवादः डॉ. मनीष मोहन गोरे) ■

संपादक	:	चंदर मोहन
संयुक्त संपादक	:	रिन्टू नाथ
प्रॉडक्शन	:	मनीष मोहन गोरे एवं प्रदीप कुमार
भाषा संपादन	:	रघुबर दत्त रिखाड़ी
पत्र व्यवहार का पता	:	विज्ञान प्रसार, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 दूरभाष : 011-26967532; फैक्स : 0120-2404437 ई-मेल : rnath07@gmail.com वेबसाइट : http://www.vigyanprasar.gov.in

''*ड्रीम 2047*'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदाई नहीं है।

''*ड्रीम 2047*'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं बशर्ते वे पत्र-पत्रिकाएं निःशुल्क वितरित की जा रही हों जिनमें पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है।

विज्ञान प्रसार के लिए मनीष मोहन गोरे द्वारा सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, प्रा. लि., ओखला औद्योगिकी क्षेत्र, फेस-II, नई दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-26388830-32

डॉ. एल. ए. रामदास – भारत में कृषि मौसम विज्ञान के जनक

एन, मणिकंदन तथा डॉ. ए.एस.आर.ए.एस. शास्त्री

डॉ. रामदास वातावरण में 'रामदास लेयर' या उत्थिष्ठ (लिफ्टेड) न्यूनतम तापमान की खोज के लिए प्रसिद्ध हैं। रामदास ने अपने सहकर्मी आत्मानाथन के साथ जर्मन पत्रिका 'बीट्रेज जुर जिओफिजिक' में इससे जुड़ा शोध प्रकाशित किया, जिसके अनुसार (भारत में) सर्दियों में साफ रात के दौरान धरती का तापमान उसके ठीक ऊपर के वायुमंडल (20.25 सेन्टीमीटर) से अधिक होता है। आगामी दशकों में विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों ने इस शोध की पुष्टि की।

डॉ. लक्ष्मीनारायपुरम अनंथकृष्ण रामदास एक भारतीय भौतिकविज्ञानी तथा मौसम विज्ञानी थे, जिनका नाम भारत और विश्व के कृषि मौसम विज्ञान समुदाय में सम्मान से लिया जाता है। उनका जन्म 3 जून 1900 को केरल के पालघाट में हुआ। भौतिक विज्ञान में स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने 1923-26 तक सी. वी. रमन के निर्देशन में शोध किया तथा "शुद्ध तरल एवं मजबूत सतह पर प्रकाश के प्रकीर्णन'' की खोज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रामदास ने सतह पर तथा गैसों में प्रकाश के प्रकीर्णन एवं प्रकाश से जुड़ी दूसरी गतिविधियों पर कई प्रयोग किये। 1928 में ईथर के वाष्प में पहली बार रामन प्रभाव की रिकॉर्डिंग पर उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया गया।

डॉ. एल.ए. रामदास
http://photodivision.gov.in

डॉ. रामदास ने 1926 में शिमला के इंडियन मीटियोरोलॉजिकल डिपार्टमेंट (उन दिनों का मौसम विभाग) में उप मौसम विज्ञानी के रूप में कार्यभार संभाला। अपने कार्यकाल के प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने विमानन मौसम विज्ञान तथा सूक्ष्म–जलवायु विज्ञान के क्षेत्रों में, जो उन दिनों अनजान विषय थे, शोध किये। कराची (उन दिनों भारत और अब पाकिस्तान का हिस्सा) तथा अलीपोर (कोलकाता) में अपनी सेवाएं देने के बाद 1931 में वे पुणे आ गए।

रॉयल कमीशन ऑन एग्रिकल्चर की अनुशंसा पर 1932 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई सी ए आर) ने कृषि मौसम विज्ञान योजना प्रारम्भ किया, जो बिलकुल नया विषय था। इस योजना के अन्तर्गत डॉ. रामदास ने "फसलों से मौसम का सम्बंध" विषय पर अनुसंधान प्रारम्भ की। बाद में ये परियोजना आईएमडी के "एग्रीमेट" यानि कृषि मौसम विज्ञान विभाग के रूप में परिवर्तित हो गई और भारत विश्व के उन चुनिन्दा देशों में शामिल हो गया, जहां कृषि मौसम विज्ञान के लिए विशिष्ट शोध व्यवस्था उपलब्ध थी। डॉ. रामदास ने सूक्ष्म–मौसम विज्ञान,

आईएमडी एग्रीमेट विभाग मुख्यालय, पुणे
(साभारः आईएमडी, एग्रीमेट वेबसाइट)

एन. मणिकंदन (एग्रिकल्चरल मीटियोरोलॉजिकल विभाग) आईसीएआर–इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ वाटर मैनेजमेंट, भुवनेश्वर, उड़ीशा में वैज्ञानिक हैं।
Email: metsate@gmail.com
डॉ. ए. एस. आर. ए. एस. शास्त्री कॉलेज ऑफ एग्रिकल्चर, इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़ के अवकाशप्राप्त प्राध्यापक (एग्रोमीटियोरोलॉजी) हैं।

फसल मौसम विज्ञान, सतह के निकट ताप तथा आर्द्रता एवं फसल–मौसम सम्बंधों की सांख्यिकी पर गहन शोध किया। उन्हीं शोधों का परिणाम था कि अभी तक कम जानकारी वाला कृषि मौसम विज्ञान दुनियाभर में प्रसिद्ध हो गया। रुडोल्फ गीजर की स्मरणीय पुस्तक "द क्लाइमेट नियर द ग्राउंड" में उनके शोध का विस्तार से उद्धरण दिया गया है। 250 से अधिक मौलिक शोधों तथा रिपोर्ट में इस महत्त्वपूर्ण शोध के परिणामों पर गहनतापूर्वक विचार किया गया, जो भारत को कृषि मौसम विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी होने का गौरव प्रदान करता है।

डॉ. रामदास ने करेंट साइंस पत्रिका (जनवरी अंक, 1933) में विस्तार से बताया कि आईएमडी के "एग्रीमेट" विभाग का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ। उनके अनुसार 1931 में तत्कालीन भारतीय वेधशालाओं के महानिदेशक डॉ. सी. डब्ल्यू. बी. नॉरमंड ने कोपेनहेगेन में हुए अंतरराष्ट्रीय मौसम विज्ञान सम्मेलन तथा लंदन में एम्पायर मीटियोरोलॉजिस्ट सम्मेलन में भाग लिया। दोनों सम्मेलनों में कृषि मौसम विज्ञान विचार–विमर्श के विषयों में शामिल था। भारत वापस आने पर उन्होंने इस विषय पर इम्पीरियल काउंसिल एग्रिकल्चरल रिसर्च के साथ विचार–विमर्श किया तथा रॉयल कमीशन ऑन एग्रिकल्चर इन इंडिया के अनुमोदनों के आधार पर एग्रिकल्चरल मीटियोरोलॉजिकल योजना शुरू करने का प्रस्ताव रखा। इस योजना पर परिषद में सहानुभूतिपूर्वक विचार किया गया तथा इसे 1932 में पांच साल के लिए आधिकारिक अनुमोदन मिल गया। दुर्भाग्यवश तत्कालीन भारत सरकार की छंटनी अभियान का ग्रहण इस योजना पर भी लगा। अनुमोदन में संशोधन किया गया, लेकिन इसे रोकने के बजाय तीन साल के लिए कार्यान्वित करने की योजना बनी। इसका बजट भी आधा कर दिया गया। आखिरकार पुणे के मौसम विभाग दफ्तर में अगस्त 1932 में कृषि मौसम विज्ञान का कामकाज प्रारम्भ हुआ।

भारत में कृषि मौसम विज्ञान के विकास में डॉ. रामदास के प्रमुख योगदान निम्नलिखित हैं :

- फार्म के वातावरण में कृषि के लिए आवश्यक डेटा को स्थानीय समय (लोकल मीन टाइम) सुबह 7 बजे और दोपहर 2 बजे पर रिकॉर्ड करने के लिए ऑब्जरवेटरी सीपित करना।
- भारत में एग्रोमीटियोरोलॉजिकल कार्यों के निष्पादन के लिए 'मानक सप्ताह' को समय की इकाई के रूप में स्थापित करना
- 1945 में किसानों को मौसम की जानकारी देने के लिए 'किसानों के लिए मौसम बुलेटिन' प्रारम्भ करना
- फसल तथा क्षेत्र के अनुसार फसल मौसम कैलेंडर का निर्माण
- वायुजीवी तथा अवायवीय दोनों तरह की फसलों के रोजाना वाष्पन–उत्सर्जन की माप के लिए ग्रेवीमेट्रिक एवं वॉल्युमेट्रिक लायसीमीटर का विकास करना

डॉ. एल. ए. रामदास (दाहिने से चौथे स्थान पर बैठे हुए) पेरिस में 3–20 नवम्बर, 1953 को हुए कमीशन फॉर एग्रिकल्चरल मीटियोरोलॉजी के पहले सत्र में सहभागियों के साथ (साभारः कमीशन ऑफ एग्रिकल्चरल मीटियोरोलॉजी के प्रथम पचास वर्ष पूरे होने पर डब्ल्यू एम ओ रिपोर्ट संख्या 999)

- चावल, गेहूं, ज्वार, कपास तथा गन्ना की फसलों के लिए पूरे भारत के लिए फसल मौसम संयोजन व्यवस्था प्रारम्भ करना
- साप्ताहिक रूप से फसलों का पर्यवेक्षण रिकॉर्ड करने के लिए नमूनों की प्रक्रिया तैयार करना

रामदास लेयर या उत्तिष्ठ न्यूनतम तापमान की खोज

डॉ. रामदास अपने 'रामदास लेयर' या उत्तिष्ठ न्यूनतम तापमान की खोज के लिए प्रसिद्ध थे। 1932 में रामदास तथा उनके सहकर्मी आत्मानाथन ने जर्मन पत्रिका 'बीट्रेज जुर जिओफिजिक' में इससे जुड़ा शोध प्रकाशित किया, जिसके अनुसार (भारत में) सर्दियों में साफ रात के दौरान धरती का तापमान उसके ठीक ऊपर के वायुमंडल (20-25 सेन्टीमीटर) से अधिक होता है। इस परिणाम पर पहुंचने के लिए चार भिन्न जगहों–पुणे, आगरा, मद्रास तथा भद्रचलम (आन्ध्र प्रदेश)–से लिए गए आंकड़ों का अध्ययन किया गया। परन्तु उनके इस शोध पर संदेह जताया गया और माना गया कि रात में धरती का तापमान न्यूनतम रहता है तथा ऊंचाई के साथ बढ़ता है।

हालांकि आगामी दशकों में विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों ने इस शोध की पुष्टि की। दिलचस्प बात ये है कि सर्वाधिक प्रामाणिक शोध का स्रोत भारत ही रहा, जिसे रामदास के निर्देशन में पुणे में तीन वर्ष तक छात्रवृत्ति पानेवाले युवा जर्मन एग्रोनॉमिस्ट क्लौस रास्की ने 1957 में प्रकाशित किया। उस पर्यवेक्षण ने रामदास लेयर के अस्तित्व से हर तरह का संदेह दूर कर दिया। वह पर्यवेक्षण वातावरण के एरोजॉल्स में ऊष्मा विकिरण प्रभाव तथा धरती की सतह के निकट संवहन के अध्ययन पर आधारित था।

बाद की सेवाएं

1953 में डॉ. रामदास पुणे के मीटियोरोलॉजिकल ऑफिस में पर्यवेक्षण विभाग (जलवायु विज्ञान तथा भू–भौतिकी) के उप महानिदेशक बने। इस पद पर रहते हुए उन्होंने आईएमडी के जलवायु विज्ञान, भू–भौतिकीय तथा कृषि मौसम कार्यक्रमों पर ध्यान देना आरम्भ किया। इसी दौरान उन्हें अल्प समय के लिए आईएमडी प्रमुख (पर्यवेक्षण महानिदेशक) भी बनाया गया।

डॉ. रामदास नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ साइंसेज ऑफ इंडिया (1970 में नाम बदलकर इंडियन नेशनल साइंस एकैडमी हुआ) के शोधकर्ता थे। वे भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भौतिकी सत्र के अध्यक्ष भी रहे। इसके अलावा वे कई अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक सोसाइटियों के सदस्य थे तथा भारतीय प्रतिनिधि के रूप में कई सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व किया। 1951 में उन्होंने बुसेल्स में इंटरनेशनल यूनियन ऑफ गॉजियोडेसी से एंड जियोफिजिक्स के नौवें सत्र में भारत के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। इसके अलावा वे आईयूजीजी (इंटरनेशनल यूनियन ऑफ गॉजियोडेसी एंड जियोफिजिक्स) के विकिरण आयोग के सदस्य रहे। उन्होंने नवम्बर 1953 में पेरिस में हुए विश्व मौसम विज्ञान संगठन (डब्ल्यू एम ओ) के कृषि मौसम विज्ञान आयोग के पहले सत्र के सभी तकनीकी तथा वैज्ञानिक मुद्दों पर विचार करनेवाले आयोग की अध्यक्षता की। इस सत्र में उन्होंने वैज्ञानिक तथा तकनीकी मुद्दों की अध्यक्षता की तथा भारत में कृषि मौसम विज्ञान के विकास से जुड़ी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्हें यूनेस्को ने 1956 में ऑस्ट्रेलिया के कैनबरा में हुए सूक्ष्म जलवायु विज्ञान पर विशेष जोर देने वाले शुष्क क्षेत्र के मौसम विज्ञान की परिचर्चा में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया।

शेष पृष्ठ 18 पर

दो मुख्य जीव, जिनमें धरती को बचाने की क्षमता है

फेलिक्स बस्त

दुनियाभर के समुद्रों में एकल–कोशिकीय साइनोबैक्टीरिया, जो प्रोक्लोरोकोकस तथा सिनेकोकोकस पौधों में पाए जाते हैं, धरती पर जीवन का आधार हैं। अगर समुद्र में तैरने वाली सूक्ष्म पौधों की दोनों प्रजातियां समाप्त हो गईं, तो देखते–देखते इंसानों समेत सभी वायुजीवियों की दम घुटने से मृत्यु हो जाएगी। ये पौधे वातावरणीय कार्बन डाइऑक्साइड को खाद्य में बदलते हैं जो सभी समुद्री जीवों का आहार हैं। वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड में वृद्धि और वैश्विक तापमान में वृद्धि से इन दोनों पौधों के समाप्त होने का खतरा है। इन्हें कैसे बचाया जाए?

जब मैं "पर्यावरण" या "वनस्पति" जैसे शब्द कहता हूं, तो आपके जेहन में पहली तस्वीर क्या उभरती है? एक खूबसूरत पार्क या हरित वनस्पतियों से भरा एक बागीचा, ऊंचे और विशाल दरख्तों का साया, या जंगल, पहाड़ और बहती नदी का विस्तृत दृश्य... जी हां, वनस्पतियों की दुनिया की बात करें तो हममें से अधिकांश के दिमाग में कुछ ऐसी ही तस्वीर उभरती है। हम सभी पेड़ों का महत्त्व जानते हैं। उनमें होने वाले प्रकाश संश्लेषण से वे खाद्य तैयार होते हैं, जो हमारा आहार बनते हैं। वे हमारे श्वसन के लिए लाभदायक ऑक्सीजन भी वातावरण में छोड़ते हैं। हम विशेष अवसरों पर, जैसे 5 जून को पड़ने वाले विश्व पर्यावरण दिवस पर वृक्षारोपण करते हैं, ताकि हम वातावरण के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दे सकें (दुर्भाग्यवश इसके तुरंत बाद हर कोई जागरूकता छोड़ देता है और अगले वर्ष उसी स्थान पर मरे हुए पौधों की जगह नये पौधों का रोपण होता है।) छात्रों तथा आम लोगों में विज्ञान प्रसार करते समय मैं सबसे पहले उनसे पूछता हूं कि दुनिया का सबसे ऊंचा पेड़ कौन है। श्रोताओं में अधिकांश एक सुर में कहते हैं 'विशाल सिकोइया' या 'कैलिफोर्निया का रेडवुड पेड़,' जो निश्चित रूप से उत्साहवर्धक है। सिकोइया अपने फैलाव के कारण पौधों का राजा कहलाता है। यहां तक कि इसका नाम प्राथमिक विद्यालय के छात्रों को भी मालूम होता है, क्योंकि यह सवाल अक्सर क्विज का हिस्सा बनता है। इसके बाद मैं पूछता हूं कि अगर दुनिया के सारे पेड़ (अभी तक करीब 60,000 प्रजातियां दर्ज की गई हैं), जिनमें विशाल सिकोइया भी शामिल है, समाप्त हो जाएं तो क्या होगा? हम सभी की मृत्यु हो जाएगी, क्योंकि उस हालत में ऑक्सीजन नहीं होगी। सही बात है?

गलत। इससे पहले कि मैं इसकी व्याख्या करूं, आपको ये बतलाता हूं कि मेरा दिन कैसे शुरू होता है। सोकर उठने के बाद एक या दो मिनट तक मैं ध्यान करता हूं। ध्यान के इस रूप को 'करुणा ध्यान' कहते हैं (वैकल्पिक तौर पर इसे प्यार–दयालुता ध्यान भी कहते हैं)। कई समीक्षाओं में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार सहानुभूति तथा करुणा, भावनात्मक बुद्धिमत्ता के विकास के लिए अनिवार्य अंग हैं। वास्तव में करुणा ध्यान बेहद आसान तथा सीधा है। कोई भी इसे उसके विषय में सोचते हुए कर सकता है, जिसके आप आभारी हैं और उस व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहते हैं।

इन दिनों जब मैं करुणा ध्यान करता हूं, तो मैं दो अति सूक्ष्म पौधों के विषय में सोचता हूं, उन्हें दिल से धन्यवाद ज्ञापित करता हूं, क्योंकि उनके बगैर धरती पर जीवन का कोई स्वरूप नहीं होता (सिर्फ इंसानियत ही नहीं।)। दो तुच्छ, अगोचर पौधे, जिन्हें कोई जानता तक नहीं, या जिनकी कोई परवाह नहीं करता, वे हैं साइनोबैक्टीरिया नामक समुद्री एकल–कोशिकीय प्रोक्लोरोकोकस तथा सिनेकोकोकस, जो दुनिया भर के समुद्रों में पाए जाते हैं।

अब हम फिर से उसी स्तंभित करने वाली प्रस्तुति की ओर लौटते हैं। क्या होगा, अगर दुनिया के सभी पेड़ तथा जंगलों का सफाया हो जाए? निश्चित रूप से इसका प्रभाव विस्तृत होगा, क्योंकि वन्यजीव तथा वनों की पारिस्थितिकी इन्हीं पेड़ों तथा हरित पौधों पर टिकी है। हालांकि ऐसा नहीं लगता कि वनों के सफाये से मानवता समाप्त हो जाएगी (कम से कम अगले कुछ सालों तक)। जब तक खाद्य के लिए कृषि का प्रयोग होगा, हम आहार को लेकर निश्चिंत रह सकते हैं। लेकिन ऑक्सीजन का क्या होगा? ये सवाल आपको अचंभित कर सकता है। दरअसल हवा में ऑक्सीजन के लिए दुनियाभर में वनों की पारस्थितिकी का योगदान बेहद कम है (लगभग 5 प्रतिशत), हवा में उपस्थित ऑक्सीजन का

डॉ. फेलिक्स बस्त एक लोकप्रिय विज्ञान लेखक तथा सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ पंजाब, बठिंडा, भारत में कार्यरत वैज्ञानिक हैं। उनकी नई पुस्तक वोयैज टू अंटार्कटिका 2017 के अंत तक छपने की उम्मीद है। ईमेल: felix.bast@gmail.com

अधिकांश हिस्सा (लगभग 80 प्रतिशत) समुद्री अल्गी से प्राप्त होता है। वातावरण की कुल ऑक्सीजन में ऊपर उल्लेख किये गए दो पौधों का योगदान 65 प्रतिशत है। अब शायद आप उन दो तुच्छ पौधों की सराहना करेंगे, जो धरती पर सभी प्रकार का जीवन संभालने में अद्‌भुत सहयोग कर रहे हैं। अगर समुद्र में तैरने वाले प्रोक्लोरोकोकस तथा सिनेकोकोकस नामक सूक्ष्म पौधों की दोनों प्रजातियां समाप्त हो गईं, तो देखते–देखते इंसानों समेत सभी वायुजीवियों की दम घुटने से मृत्यु हो जाएगी। क्योंकि हम सभी अपने आहार को ऊर्जा में 'बदलने' के लिए हवा में उपस्थित ऑक्सीजन पर निर्भर करते हैं। हालांकि इस गंभीर स्थिति में भी जीवन के कुछ प्रकार बचे रहेंगे। विशेषकर बैक्टीरिया तथा समुद्र पर उतराने वाले बेहद सूक्ष्म "लोरिसिफेरा" नामक जीवाणु, जो अवायवीय हैं और बिना ऑक्सीजन के भी जिंदा रह सकते हैं। इन सूक्ष्म रूपों के अलावा जीवन को आधार देने वाले उस ऑक्सीजन के अभाव में जिंदगी पूरी तरह समाप्त हो जाएगी, जिसका विशाल उत्पादन प्रोक्लोरोकोकस तथा सिनेकोकोकस नामक सूक्ष्म पौधे करते हैं।

इन दोनों अद्‌भुत जीवों को साइनोबैक्टीरिया कहते हैं, जो एकल–कोशिका जीवाणुओं का उपसमूह है। सूक्ष्म पौधों की दोनों प्रजातियों के अलावा सिर्फ साइनोबैक्टीरिया ही था, जो करीब 3.8 अरब वर्ष पहले हमारी धरती की उत्पत्ति के समय वातावरण में ऑक्सीजन निष्कासित करता था। स्ट्रोमेटोलाइट्स नामक धरती पर पाया गया प्राचीनतम अवशेष (लगभग 3.7 अरब वर्ष पुराना), वास्तव में इसी समुद्री साइनोबैक्टीरिया का एक के ऊपर दूसरा चढ़ा हुआ स्तर है, जो बाद में कठोर होकर चट्टान बन गया। साइनोबैक्टीरिया एक प्रकार का जीवाणु है। प्रकृति में पाए जाने वाले जीवाणु कथित बायो–फिल्म में रहते हैं। कभी गौर किया कि जब एक छिद्रयुक्त बरतन से पानी गिराया जाए, तो उसमें बचा हुआ पानी का अंश छिद्रयुक्त दीवारों पर झिल्ली बना देता है, यही बायो–फिल्म है।

दुनियाभर के समुद्रों में प्रोक्लोरोकोकस तथा सिनेकोकोकस भारी मात्रा में पाए जाते हैं। आर्कटिक से लेकर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से होते हुए अंटार्कटिक महासागर तक इनकी उपस्थिति है। फिर भी ये सिर्फ समुद्र की सतह पर ही पाए जाते हैं। जानते हैं क्यों? समुद्र में तैरने वाले सूक्ष्म पौधे प्रकाश संश्लेषण करते हैं। उन्हें जिंदा रहने के लिए सूर्य का प्रकाश चाहिए। सूर्य का प्रकाश समुद्र की सतह के सिर्फ प्रारम्भिक 200 मीटर तक ही जा सकता है। यदि कोई स्कूबा गोताखोरी करता है तो पानी के भारी दबाव से बचने के लिए विशेष गोताखोरी वाले कपड़ों का उपयोग करता है (अब तक सबसे गहरी गोताखोरी 332 मीटर है), तो उसे सिर्फ अंधेरे का सामना करना पड़ेगा। इस क्षेत्र को 'डिस्फोटिक' क्षेत्र कहते हैं। अंधेरे का ये क्षेत्र समुद्र की तली तक फैला होता है। सबसे गहरा क्षेत्र मरीना ट्रेन्च का चैलेन्जर डीप है, जिसकी गहराई 10,916 मीटर है और जो जापान के तट में स्थित है। दिलचस्प बात है कि गहराई में गोताखोरी करने के बजाय अगर हम अंतरिक्ष में रॉकेट से जाते हैं, जैसा राकेश शर्मा 1984 में गए थे, तो वहां भी गहन अंधेरा मिलता है।

क्योंकि धरती की अधिकांश सतह पर पानी है (लगभग 71 प्रतिशत) तथा समुद्र की सतह पर तैरनेवाले ये पौधे भारी मात्रा में हैं, ऑक्सीजन उत्पादन में उनके योगदान का आसानी से आकलन किया जा सकता है। हालांकि ये दोनों पौधे मानव नजरों से ओझल रहे हैं। हममें से अधिकांश ने उनका नाम तक नहीं सुना होगा। मेरे भाषणों के दौरान कई श्रोताओं की शिकायत है कि प्रोक्लोरोकोकस का उच्चारण जीभ के लिए ठीक उसी प्रकार ऐंठन भरा है जैसे अंग्रेजी का वाक्य – "she sells seashells on the seashore"। उल्लेखनीय है कि जिस व्यक्ति ने जीभ में ऐंठन लानेवाला seashell शब्द प्रतिपादित किया था, वो भी एक जीवाश्म विज्ञानी है और उसका नाम मेरी एनिंग है। आश्चर्य की बात है कि किसी को इन सूक्ष्म पौधों के विषय में नहीं मालूम, जबकि सिकोया के बारे में सभी ने सुना है।

कुछ पूर्वाग्रह हैं, जिन्हें हमारी बुद्धि अवचेतन मन में घोप देती है, जिनसे हमारी चेतन अवस्था अनभिज्ञ होती है। से तथा चोरी–चोरी हमारी चेतना पर अनजाने में थोप देते हैं – ज्ञान सम्बंधी कथित पूर्वाग्रह। ज्ञान सम्बंधी ऐसे ही एक पक्षपात को 'पुष्टीकरण पूर्वाग्रह' कहते हैं, जिसमें पुरानी सूचनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जो हमारी पहले से स्थापित मान्यताओं तथा विश्वास को मजबूत करता है। मान लीजिये कि आप शाकाहारी हैं। क्या आप वैसे आलेख पढ़ना या टीवी कार्यक्रम देखना पसंद करेंगे, जिसमें बताया जा रहा हो कि विकासवाद के प्रारम्भिक समय में मानव क्यों शाकाहारी नहीं था? बल्कि आप वैसे आलेख तलाशेंगे तथा उन्हें पढ़ना पसंद करेंगे, जिसमें बताया गया हो कि शाकाहारी होना क्यों स्वस्थ विकल्प है तथा वातावरण के लिए क्यों लाभप्रद है। हमारे इकलौते घर, धरती पर शाकाहारी तथा मांसाहारी सभी रहते हैं और हम सभी इस घर को प्यार करते हैं। क्या आप ऐसा आलेख पढ़ना पसंद करेंगे जो कहता हो, कि धरती उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है। ये सिर्फ सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। दरअसल ईसा पूर्व 280 में किसी ने अरिस्टार्कस की बातों पर ध्यान नहीं दिया था, जब उन्होंने धरती के केन्द्र में होने (धरती के ब्रह्मांड के केन्द्र में होने का सिद्धांत) पर सवाल उठाए थे। मध्य युग में धार्मिक असहिष्णुता इतनी अधिक थी कि अरिस्टार्कस को पाखंडी बताते हुए उनके दावे को तब तक नकारा गया, जब तक निकोलस कोपरनिकस ने साबित नहीं कर दिया कि अरिस्टार्कस सही थे। धरती सौर मंडल का एक अंग भर है और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। दूसरे शब्दों में, पूरे मध्य युग में मानवता पुश्टीकरण के चंगुल में तब तक फंसी रही, जब तक कि कोपरनिकस ने इस पूर्वाग्रह से हमें अवगत नहीं कराया।

1859 में डार्विन के 'ओरिजिन ऑफ स्पेसीज' के प्रकाशन से पहले भी कुछ ऐसी ही स्थिति थी। प्राकृतिक चयन के द्वारा मानव उद्‌भव के उनके सिद्धांत को नकार दिया गया था, जिसमें इंसानों को धरती पर रहनेवाले एक करोड़ सजीवों में सिर्फ एक जानवर से उद्‌भव किया हुआ बताया गया था। मानवता घबराई हुई थी (कई लोग अब भी घबराए हुए हैं, उदाहरणार्थ, तुर्की ने हाल में डार्विन का सिद्धांत स्कूलों में पढ़ाया जाना प्रतिबंधित कर दिया है)। क्योंकि हम इंसान हैं, और हम मानते हैं कि हममें सभी सजीवों पर शासन करने की क्षमता है। मानव केन्द्रित दुनिया के ये विचार, या कथित 'नरकेन्द्रीकरण' भी पुश्टीकरण पूर्वाग्रह का एक प्रकार है। इसी प्रकार, हम जमीन पर रहने वाले प्राणी हैं। चूंकि इत्तेफाक से हम स्थलीय प्राणी हैं, इसलिए हम घोषणा करना चाहते हैं कि जमीन पर रहने वाले ही धरती पर शासन करते हैं। कूपमंडुक मेढक की भांति हम मानते थे कि धरती का अर्थ जमीन है और पानी महत्त्वहीन है।

वनस्पति विज्ञान विभाग दुनियाभर के लगभग सभी विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों में उपस्थित है। आश्चर्यजनक बात है कि सभी संसाधन, चाहे वे फैकल्टी हों या शोध कार्य, मुख्य रूप से जमीनी पौधों और विशेषकर खेती से जुड़े हैं, क्योंकि इनसे हमें जीवनयापन के लिए आहार प्राप्त होता है। इनमें कितने विभाग समुद्री जीव विज्ञान पर कार्य करते हैं? कितने वैज्ञानिक उन सूक्ष्म, अगोचर पौधों पर शोध करते हैं? शायद बेहद कम। साइनोबैक्टीरिया तथा अल्गी पर शोध करनेवाले को फाइकोलॉजिस्ट कहते हैं (फाइकोलॉजी विभाग), और भारत में करीब 20 जीवित फाइकोलॉजिस्ट हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जिनमें मैं भी शामिल हूं, जो वाकई एक विलुप्तप्राय प्रजाति है। वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि हम समुद्रों की तुलना में चन्द्रमा के विषय में अधिक जानकारी रखते हैं। ऐसा नरकेन्द्रित रवैये के लिए पक्षपात तथा 'प्रायोगिक' विज्ञान के प्रति एकतरफा झुकाव का नतीजा है। उपयोगितावाद तथा 'होमो सैपियन्स' नामक प्राणी का अस्तित्व बेहतर बनाने का जुनून इन सभी परेशानियों की जड़ है। प्रारम्भिक दौर में विज्ञान कौतूहल से जुड़ा था (उपयोगितावाद से नहीं), और क्रमिक विकास, वर्गीकरण, फाइकोलॉजी, गणित, अंतरिक्ष विज्ञान, अभी भी कौतूहल प्रेरित हैं। समुद्री जीव विज्ञान का महत्त्व पूरी मानवता तथा धरती पर जीवन के लिए अत्यधिक है, क्योंकि जिस ऑक्सीजन को हम श्वसन के द्वारा ग्रहण करते हैं उसका अधिकांश भाग अल्गी उत्पन्न करता है, और जीवन के लिए हमारी सांसें हमारे आहार जितनी महत्त्वपूर्ण हैं।

ये सिक्के का दूसरा पहलू है, जो उतना ही आवश्यक है। जिन दो जीवों के विषय में हम बात कर रहे थे, वे धरती पर कार्बन डाई ऑक्साइड कम करने में सर्वाधिक, यानी करीब 65 प्रतिशत योगदान देते हैं। समुद्र की सतह पर तैरनेवाले अन्य पौधों के साथ मिलकर ये पौधे वातावरण में स्थित कार्बन डाइऑक्साइड को खाद्य में बदलते हैं, जो सभी समुद्री जीवों का आहार बनता है। दरअसल वैज्ञानिक जिसे समुद्री जीव वैज्ञानिक उत्पादकता कहते हैं, समुद्र में तैरने वाले सूक्ष्म पौधे उसका आधार हैं। प्राणीप्लवक (जू प्लैंकटन्स) नामक छोटे समुद्री कीड़े इन अल्गी को खाते हैं, जिन्हें बड़ी मछलियां अपना आहार बनाती हैं। यह श्रृंखला शार्क तथा व्हेल तक पहुंचती है (तकनीकी रूप से व्हेल परभक्षियों की कड़ी में सबसे ऊपर नहीं है, वे क्रिल नामक छोटे क्रसटेशियन खाते हैं, जो अल्गी तथा समुद्र की सतह पर तैरने वाले पौधों को अपना आहार बनाते हैं)। लिहाजा अगर ये दो जीव समाप्त हो जाते हैं, तो समुद्री जिंदगी भी समाप्त हो जाएगी। सभी समुद्री जीवों की मौत हो जाएगी और उनके शव एक के ऊपर एक इकट्ठा होते जाएंगे। लाखों साल पहले, वातावरणीय कार्बन से भरपूर ऐसे डूबे हुए शवों पर दबाव पड़ता रहा और कालान्तर में वे काले रंग के तरल में परिणत हो गए। इस काले तरल पर पूरी मानवता (कोई दूसरा सजीव नहीं) आज की तारीख में निर्भर करती है, और इसे "काला सोना", यानी कच्चा तेल कहती है। इसे शुद्ध कर पेट्रोलियम ईंधन उत्पन्न किये जाते हैं। अगली बार पेट्रोल पम्प पर आपको पेट्रोल की गंध आए तो इन दो जीवों को याद कीजिएगा, क्योंकि जो गंध आपकी नाक में जा रही है, वो और कुछ नहीं उन्हीं का मृत शरीर है। आप उन जीवाश्मों की गंध ले रहे हैं, जो अधिकांश इन्हीं दो जीवों से तैयार हुए हैं। लिहाजा इन्हें "जीवाश्म ईंधन" कहते हैं।

धरती के इतिहास में हम एक अद्भुत समय में जी रहे हैं। इसके 4.543 अरब साल के इतिहास में कभी किसी जीवित प्राणी को पेट्रोल की गंध नहीं मिली थी। पहले वैश्विक कार्बन चक्र निर्बाध चल रहा था। वातावरण में अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड (जिनमें अधिकांश ज्वालामुखी के कारण उत्पन्न होते थे) समुद्र में तैरने वाले पौधों के द्वारा आसानी से ग्रहण कर लिये जाते थे, और इस तरह वातावरण में पाया जाने वाला कार्बन समुद्र की गहराइयों में उन पौधों के मृत शरीरों के साथ दफन हो जाता था। वातावरण के अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड कम करने की प्रक्रिया को तकनीकी रूप से "कार्बन प्रच्छादन" (सीक्वेस्ट्रेसन)'' कहते हैं। दुनिया में अधिकतर कार्बन प्रच्छादन इन्हीं दो अल्गी के द्वारा होता है।

18वीं सदी तक ये चक्र सुचारू रूप से चल रहा था, जब इंग्लैंड में ईंधन के लिए कोयले के प्रयोग ने "औद्योगिक क्रान्ति" का प्रारम्भ किया। जैसा हम जानते हैं कि कोयला पौधों का जीवाश्म है, जो लाखों वर्ष पूर्व जीवित थे और जिन्होंने प्रकाश संश्लेषण के जरिये कार्बन इकट्ठा किया था। समुद्र में तैरने वाले जीवों की तरह पेड़ और विशाल पौधे भी समुद्र में डूब गए और लाखों वर्ष पश्चात कोयले में परिणत हो गए, जिनकी आज हम खुदाई कर रहे हैं।

जब हम कोयला या पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधन को जलाते हैं, तो जीवाश्म में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड हवा में घुलते हैं, जिससे वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है। जब भी हम जीवाश्म ईंधन जलाएं, तो हमें याद रखना चाहिए कि हवा में मिलने वाला कार्बन का प्रत्येक अणु चाहे वो कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में हो या कार्बन मोनो ऑक्साइड के रूप में, मूल रूप से लाखों साल पहले हरित पौधों तथा समुद्र में तैरनेवाले पौधों द्वारा अवशोषित किया गया था। जीवाश्म ईंधनों के जलने से वैश्विक कार्बन चक्र खतरे में पड़ रहा है, क्योंकि उन्हें पूरी तरह अवशोषित करना समुद्र में तैरनेवाले इन पौधों के बूते के बाहर है। इसके कारण वातावरण में अतिरिक्त कार्बन की मात्रा उत्पन्न हो रही है। इसके नतीजे विनाशकारी हैं। यहां से आगे की कहानी हर कोई जानता है। यानी वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापमान में वृद्धि इत्यादि के बारे में सभी जानते हैं। लेकिन क्या यही पूरी तस्वीर है?

दुर्भाग्यवश, हममें से अधिकांश कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि के सबसे खतरनाक नतीजे को नहीं जानते। नहीं, ये वैश्विक तापमान में वृद्धि नहीं है। इसका रासायनिक दुष्प्रभाव अधिक है। कभी सोडा के रूप में पानी में बुलबुले छूटते देखा है? ये बुलबुले और कुछ नहीं, बल्कि पानी में घुले कार्बन डाइऑक्साइड हैं। जब आप कार्बन डाई ऑक्साइड को पानी के साथ मिलाते हैं, तो कार्बन डाइऑक्साइड के अणु पानी के अणुओं के साथ प्रतिक्रिया कर कार्बोनिक अम्ल तैयार करते हैं। दुनियाभर में समुद्र के पानी के साथ भी यही प्रक्रिया होती है। वातावरणीय कार्बन डाइऑक्साइड समुद्र के पानी में घुलकर समुद्री पानी में अम्ल बढ़ा देता है। अम्ल एक समस्या है, चाहे वो पेट में हो (कभी एंटासिड खाया है?) या समुद्र में। समुद्र में अम्ल दोनों मुख्य प्रजातियों समेत अल्गी को नष्ट करता है। इसके साथ ही हमारी कहानी भी समाप्त होती है। क्योंकि दुर्भाग्यवश इसके बाद धरती पर जीवन का नामोनिशान नहीं बचेगा। पिछले दो दशकों से समुद्री पानी में अम्ल की मात्रा बढ़ने का दुष्प्रभाव अच्छी तरह महसूस किया जा रहा है। इस प्रक्रिया को 'समुद्र अम्लीकरण' कहते हैं। अम्ल की मात्रा के बढ़ने से कोरल चट्टानों के भीतर पाए जाने वाले जूजैन्थेला नामक अल्गी काफी हद तक समाप्त हो चुके हैं। जैसा कि आप जानते हैं कोरल चट्टान सहजीवी होते हैं–आंशिक रूप से जीव (निडारियंस) तथा आंशिक तौर पर पौधे (अल्गी)। जीव वाला हिस्सा अल्गी को पालता है तथा बदले में अल्गी उसे खाद्य देते हैं, जो एक बेहतरीन समन्वय है। ये रिश्ता गुलाब तथा तितली के बीच रिश्ते सरीखा है। (गुलाब जैसे फूल परागों को एक फूल से दूसरे में भेजने के लिए तितली जैसे परागणकारी पर निर्भर करते हैं। इसके लिए परागणों को रस का आकर्षण दिया जाता है, जो कीड़ों को सर्वाधिक पसंद है।) दुर्भाग्यवश, दुनियाभर के समुद्रों में अम्ल में वृद्धि कोरल के सहयोगी समुद्री अल्गी के लिए घातक हैं। सहजीवी अल्गी के मरने से कोरल की भी मौत हो जाती है। इस प्रक्रिया को कोरल विरंजन कहते हैं। ऐसी परिस्थिति में चटकीले टेक्नीकलर रंगों वाले कोरल एक गोताखोर को सफेद रंग में नजर आएंगे।

हम सभी वातावरणीय तापमान में वृद्धि से परिचित हैं, लेकिन क्या कभी सोचा है कि इस ऊश्मा का सर्वाधिक अंश कहां जाता है? नहीं। बाहरी अंतरिक्ष में नहीं, क्योंकि अंतरिक्ष में इस ऊर्जा को अपने अणुओं में संरक्षित रखने के लिए गैस का अभाव है। अब ये बिना किसी शक के सुनिश्चित हो चुका है कि अधिकांश ऊश्मा दुनियाभर के समुद्रों में अवशोषित हो रही है, जिससे समुद्रों के तापमान में वृद्धि हो रही है। यानी खतरा दोहरा है – अम्ल तथा तापमान।

यह आलेख लिखते समय तक हमारे लक्षद्वीप टापुओं के अधिकांश कोरल विरंजित होकर सफेद हो चुके हैं और गोताखोरों की उनमें दिलचस्पी नहीं बची है। ऑस्ट्रेलिया के उत्तर–पूर्वी तट पर स्थित ग्रेट बैरियर रीफ, जहां दुनिया की सबसे विशाल कोरल चट्टानें पाई जाती हैं, भी असंतुलित तथा गोताखोरों के लिए बेकार हो चुकी है। समुद्री जिंदगी की जानकारी प्राप्त करने के लिए गोताखोरी "समाप्त होने के कगार पर है" (कुछेक निषिद्ध क्षेत्रों को छोड़कर) समुद्र में अम्ल की मात्रा तथा तापमान बढ़ने की दोहरी मार से अधिकतर अल्गी समाप्त हो चुके हैं। अधिकतर फाइकोलॉजिस्ट मानते हैं कि अब विनाश की बारी समुद्र की सतह पर तैरनेवाली दोनों पौधों के प्रजातियों की है। उल्टी गिनती करीब एक सदी पूर्व शुरु हो चुकी है और अपनी विश्वासपरक तथा सकारात्मक ऐनक से देखने पर भी हम अब आखिरी घड़ी में पहुंच रहे हैं। मैं आपके सवाल के बारे में अंदाजा लगा सकता हूं, जो अंतिम सवाल है –उन्हें कैसे बचाया जाए?

दुर्भाग्यवश, हम विश्व पर्यावरण दिवस पर उनका रोपण नहीं कर सकते। हम उनमें पानी नहीं पटा सकते, या उनकी जैविक खेती कर सकते, क्योंकि समुद्र में तैरनेवाले पौधों को इनमें से किसी की आवश्यकता नहीं, एक हठी व्यक्तित्व की तरह। हमारे पास सिर्फ एक उपाय है। ये उपाय मैंने जापान में अपने पीएचडी के वक्त सीखा था, जो तीन R में सन्निहित है – Reduce यानी

शेष पृष्ठ 15 पर

तंबाकू – एक घातक सहचर
तंबाकू के प्रत्येक रूप को ना कहें

डॉ. मन मोहन सिंह

कैंसर के कारण होने वाली 30 प्रतिशत से अधिक मृत्यु तंबाकू के कारण होती हैं, लगभग 90 प्रतिशत मृत्यु फेफड़ों के कैंसर के कारण और लगभग 75 प्रतिशत चिरकालिक ब्रोंकाइटिस और एम्फीसीमा के कारण। अप्रत्यक्ष धूम्रपान को प्रत्यक्ष से अधिक खतरनाक समझा जाता है, क्योंकि कोई भी धूम्रपान करने वालों के विषैले निक्षेप का अंतर्ग्रहण कर सकता है। धूम्रपान करने वालों के साथ रहने वाले धूम्रपान न करने वाले अप्रत्यक्ष/पर्यावरण के तंबाकू के धुएं का अंतर्ग्रहण करते हैं, उनमें फेफड़ों के कैंसर का खतरा 20–30 प्रतिशत तक बढ़ जाता है जब कि उन्होंने कभी एक भी सिगरेट नहीं पी होती।

तंबाकू मृत्यु और अपंगता का प्रमुख निरोध्य कारण है और विश्व भर में हर साल 60 लाख लोगों को मार रहा है, जो ट्यूबरकुलोसिस, एचआईवी/एड्स और मलेरिया के कारण कुल होने वाली मौतों से भी अधिक है जिसमें से 50 प्रतिशत मृत्यु मात्र चार देशों चीन, भारत, अमेरिका और रूस में होती है। डब्ल्यूएचओ के अनुमान के अनुसार, प्रत्येक 5–6 सेकेंड में एक व्यक्ति तंबाकू के प्रयोग के कारण मर जाता है, लोग तंबाकू का उपयोग अपने तारुण्य में शुरू कर देते हैं और दो दशकों तक जारी रखने के बाद तंबाकू का प्रयोग न करने वालों की अपेक्षा 20–25 साल पहले मर जाते हैं, बीसवीं शताब्दी में तंबाकू के कारण वैश्विक स्तर पर 100 मिलियन समय पूर्व मृत्यु हुयीं और तंबाकू का प्रयोग करने की यह प्रवृत्ति जारी रही, 21वीं शताब्दी में संख्या बढ़ कर एक बिलियन होने की आशा है।

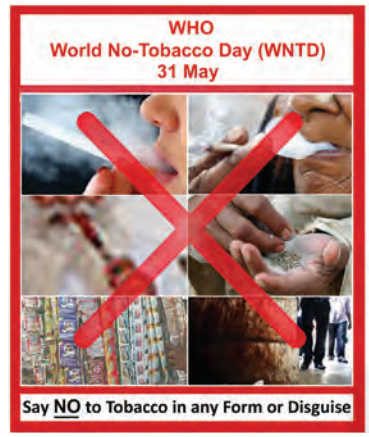

1989 से हर साल 31 मई को डब्ल्यू. एस.ओ. द्वारा 'वर्ल्ड नो–टोबैको दिवस' के रूप मे मनाया जाता है।

वैश्विक रूप से भारत दूसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता है और विश्व में तंबाकू के कारण होने वाली मौतों के छठवें भाग के लिए उत्तरदायी है। तंबाकू उत्पादों पर लगाए गए भारी कर, जो स्वास्थ्य और विकास के लिए कुछ राजस्व की उगाही कर सकते हैं, सामान्यतः तंबाकू की खपत के लिए महत्वपूर्ण निवारक नहीं हैं। वास्तव में, भारत में तंबाकू की समस्या अनियंत्रित उपलब्धता के कारण तथा विभिन्न प्रकार के धूम्रपान (सिगरेट, *बीड़ी,* सिगार, *हुक्का, चिलम,* पाइप आदि) के साथ साथ बहुत से बिना धुएं वाले तंबाकू उत्पादों के कारण *(जर्दा, किमाम, खैनी,* मावा, *नसवार, गुटखा, पान मसाला,* पान की गिलौरी, आदि), जटिल और विलक्षण बनी है, इनमें से अनेक कॉटेज/लघु उद्योगों और अमान्यता प्राप्त क्षेत्र में बनाए जाते हैं। ये उत्पाद दुकानों में और ऑनलाइन खरीदारी के लिए उपलब्ध होते हैं, और तंबाकू का उपयोग विशेष रूप से ग्रामीण झुग्गियों में रहने वाले और बड़ी उम्र के लोगों में ज्यादा देखा गया है। 1989 से, स्वास्थ्य पर तंबाकू के बुरे प्रभाव पर जोर देने के लिए 31 मई को 'विश्व तंबाकू निषेध दिवस' मनाया जाता है।

तंबाकू का उपयोग

पूर्व में तंबाकू को औषधीय गुणों वाला समझा जाता था और कुछ साहित्य में इसे 'भूले हुए कल्याणकारी पौधे, के रूप में भी वर्णित किया गया है, लेकिन कुछ थे जो इसे बुरा भी समझते थे। समय के साथ, लोगों और वैज्ञानिकों ने इसके हानिकारक प्रभावों को समझा। भारत में होने वाले तंबाकू के कुल वार्षिक उत्पादन (लगभग 800 मिलियन किग्रा; चीन के 2,800 मिलियन किग्रा के बाद दूसरे स्थान पर), में से लगभग 48 प्रतिशत चबाने में, 38 प्रतिशत *बीडियों* में, और केवल 14 प्रतिशत सिगरेट के रूप में प्रयोग किया जाता है; भारत के तंबाकू

डॉ. मन मोहन सिंह, पूर्व आईसीएमआर एमेरिटस मेडिकल साइंटिस्ट; प्रमुख वैज्ञानिक, एन्डोक्राइनोलॉजी विभाग, सीएसआईआर–केंद्रीय औषध अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, और सरस्वती डेन्टल कालेज, लखनऊ; के निदेशक आर एंड डी थे। Email: singhmm46@gmail.com.

तंबाकू की खेती और इसकी पत्तियों की कयोरिंग

उत्पादन के बहुत बड़े भाग (86%) से बीडियां और चबाने वाला तंबाकू बनता है। जब कि शेष विश्व में तंबाकू से संबंधित कुल उत्पादों का लगभग 90 प्रतिशत सिगरेट में खपता है।

तंबाकू धूमन

लैनसेट में प्रकाशित अध्ययन 'ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज' के अनुसार, भारत लगभग दो तिहायी (63.6%) तंबाकू धूमन करने वालों में 10 शीर्षस्थ देशों में था। डब्ल्युएचओ की हाल ही एक रिपोर्ट के अनुसार, हर साल तंबाकू एक ट्रिलियन डालर को धुएं में उड़ा देता है। किसी भी रूप में तंबाकू धूमन स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न करता है: उनके लिए खतरा ज्यादा है जो बहुत कम उम्र में धूम्रपान शुरू कर देते हैं, अधिक वर्षों तक धूम्रपान करते हैं, प्रतिदिन ज्यादा सिगरेट या किसी और रूप में (विशेष रूप से अधिक टार अंश वाले) धूमन करते हैं, लंबे समय तक धूम्रपान करते हैं और धुएं की अधिक मात्रा अंतर्ग्रहित कर लेते हैं।

तंबाकू उत्पाद उन दो उत्पादों में से एक हैं जिनमें लेबलिंग करने से छूट दी गई है (अन्य अल्कोहलीय मादक पेय होते हैं), फलतः इनके अपघटक आमतौर से 600 से अधिक साभिप्राय योजकों से भरे होते हैं; ये हालांकि FDA-GRAS द्वारा उपयोग के लिए अनुमोदित होते हैं, लेकिन जलाने/अंतर्ग्रहित करने के लिए नहीं, क्योंकि जलाने से ये योजक संभावित रूप से हानिकारक/कार्सिनोजेनिक उत्पादों में बदल जाते हैं।

तंबाकू के प्रारूप धूमन

सिगरेट तंबाकू की कटी संसाधित पत्तियों को श्वेत कागज में लपेट कर बनायी जाती है। ऐतिहासिक रूप से, जब वेस्टइंडियन, एजटैक और मायावासी खोखले सरकंडे/वेंत/मकई का उपयोग बेलनाकार तंबाकू–होल्डर की तरह करते थे, तुर्क/मिस्री युद्ध के दौरान एक मिस्री सिपाही को इस सिगरेट की खोज का श्रेय जाता है जैसी कि आज हम देख रहे हैं। यह कहा जाता है कि एक्रे की घेराबंदी (1799) के दौरान, एक मिस्री तोप चालक ने कागज की नलियों में बारूद को लपेट कर जलने की दर को बेहतर बनाया था और उसे एक पाउंड तंबाकू का पुरस्कार दिया गया था। जब उनका एकमात्र पाइप टूट गया, उन्होंने तंबाकू को कागज में लपेटना शुरू कर दिया और यह खोज तुर्की और मिस्री सिपाहियों में फैल गयी। बाद में क्रिमियन युद्ध (1853-1856) के दौरान, ब्रिटिश सिपाहियों ने अपने तुर्की साथियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली सस्ती और सुगम सिगरेटों (*'पेपिरोसी'*) के बारे में सुना और इस प्रक्रिया को इंग्लैंड तक ले आए।

माना जाता है कि *बीड़ी* (गरीब आदमी की सिगरेट) का सृजन तब हुआ जब तंबाकू के कारीगरों ने बची हुयी तंबाकू को पत्तियों में लपेटा। पारंपरिक रूप से, बीड़ी पतली, हाथ से लपेटी गयी, तंबाकू के टुकड़ों से भरी अनफिल्टर्ड भारतीय सिगरेट, धूप में सुखायी गयी तेंदु *(डायऑस्पाइरस मिलेनोजाइलॉन)*, तेमबरनी *(डायऑस्पाइरस*

पुरुषों व महिलाओं के द्वारा बीड़ी निर्माण और बीड़ी का सेवन

टोमेंटोसा) या बीड़ी लीफट्री *(बॉहिनिया रेसीमोसा)* की पत्तियों में लिपटी ,धागे से बंधी होती हैं। सिगरेट के विपरीत, बीड़ी को जलाए रखने के लिए बार बार फूंकने की जरूरत होती है, इसके लिए न केवल ज्यादा मेहनत लगती है, बल्कि धुआं भी ज्यादा अंदर जाता है। सिगरेट से बहुत सस्ती होने के कारण गरीबों में अधिक लोकप्रिय बीड़ी से अधिक निकोटिन, कार्बन मोनोऑक्साइड और टार निकलते हैं और इस प्रकार तंबाकू खाने के अन्य प्रारूपों की अपेक्षा अधिक हानिकारक होती है। अध्ययन दिखाते हैं कि प्रतिदिन 500–1000 बीड़ी लपेटने वाले 225–450 ग्राम तंबाकू फ्लेक्स को प्रबंधित करने वाले कामगारों के शारीरिक द्रवों में कोटिनीन (तंबाकू/निकोटिन मेटाबोलाइट) का स्तर कभी तंबाकू का प्रयोग न करने वालों की अपेक्षा बहुत बढ़ गया। हाल ही में, प्रमुख कैंसर विशेषज्ञों और स्टेट–फंडेड नेशनल कैंसर ग्रिड के तत्वावधान में टाटा मेमोरियल हॉस्पिटल के निदेशक डॉ आर ए बादवे के नेतृत्व में 108 कैंसर के अस्पतालों ने नागरिकों के लाभ के लिए भारत सरकार से बीड़ी सहित सभी तंबाकू उत्पादों को जीएसटी के अंतर्गत दोषपूर्ण उत्पादों की सूची में शामिल करने का अनुरोध किया है।

सिगार, तंबाकू की अखंडित शुष्क एवं किण्वित पत्तियों का कस कर लपेटा गया बंडल होता है, जिसे अनेक प्रकार के आकार और प्रकार में लपेटा जाता है। हालांकि इसका सही उद्गम स्पष्ट नहीं है, सिगार के धुएं का फेफड़ों में अंतर्ग्रहण नहीं किया जाता है। सिगार पीने वाले आमतौर से बाहर निकालने से पहले धुएं को मुंह में घुमाते हैं और फिर इसका कुछ भाग स्वाद के साथ साथ गंध लेने के लिए नाक से बाहर निकालते हैं। सिगार में धुआं तंबाकू के अधूरे दहन द्वारा निकलता है, तंबाकू के धूमित किए गए प्रत्येक ग्राम से लगभग 120–140 मिग्रा कार्बन डाइऑक्साइड, 40–60 मिग्रा कार्बन मोनोऑक्साइड, 3–4 मिग्रा आइसोप्रीन, हाइड्रोजन सायनाइड और एसिटल्डिहाइड प्रत्येक का 1 मिग्रा, वाष्पशील N-नाइट्रोसामीन, कार्बनिक यौगिकों और सुवासित पिरीडीन और पाइराजीन की थोड़ी मात्रा निकलती है। किण्वित तंबाकू से बनाए गए सिगार पीने से अनेक तंबाकू–विशिष्ट नाइट्रोसामीन–सबसे अधिक प्रबल ज्ञात कार्सिनोजन–उत्पन्न होते हैं। सिगार का धुआं, सिगरेट के धुएं से अधिक क्षारीय होने के कारण सरलता से घुल जाता है और मुख की म्युकस भित्ति में अवशोषित हो जाता है, इससे धूम्रपान करने वाले के लिए धुएं को बिना अंतर्ग्रहण किए ही निकोटिन को अवशोषित करना सुगम हो जाता है।

हुक्का, पाइप का बड़ा प्रारूप होता है जिसके तल पर पानी का बर्तन होता है जिसके जरिए धूम्रपान करने वाले के मुख तक पहुंचने से पहले धुएं के बुलबुले बन जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि हुक्के का उद्भव फारस के सफाविद शासनकाल में हुआ था, जहां से यह घटनाक्रम में पूर्व की ओर भारत में फैला और फिर ऑटोमान के शासनकाल में मिस्र और भूमध्य सागरीय तट तक पहुंचा, जहां यह लोकप्रिय हो गया और इसकी क्रियाविधि भी उत्तम थी। हाल के वर्षों में, हुक्का पीने को लोकप्रियता मिली, विशेष रूप से महिलाओं और युवाओं में। परिणामस्वरूप, हुक्का बार/कैफे/क्लब्स/लाउंज में अनेक प्रकार की सुगंध वाले एक या अनेक नलियों वाले हुक्के मिलने लगे और पार्टी/मनोरंजन/सामाजिक/खाली समय गुजारने के लिए प्रमुख सभाओं में बड़ी संख्या में उनकी सर्विस बढ़ गयी। हुक्का पीने को कुछ हद तक सुरक्षित, खतरा–मुक्त समझा जाता है। हालांकि, यह एक गलत धारणा है कि गिगरेट/बीड़ी/सिगार पीने से

हुक्का पीना सुरक्षित होता है क्योंकि अंतर्ग्रहण से पहले वाष्प/धुआं पानी के बेसिन से होकर गुजरता है। वास्तव में, पानी धुएं को केवल ठंडा और आर्द्र कर देता है और कुछ निस्यंदित कणों को हटा देता है, लेकिन इसके विषैले संघटकों को फिल्टर नहीं करता। वर्तमान प्रमाण दिखाते हैं कि हुक्का पीने से, तंबाकू, चारकोल और सुगंधकारियों के जलने से निकलने वाले अनेक विषैले संघटकों से संपर्क के बढ़े खतरे के साथ अनेक स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं, और हुक्के की नलियों को ठीक से साफ न किए जाने के कारण और हुक्का–शेयरिंग की आदत के कारण अनेक संक्रामक रोग हो सकते हैं।

चिलम एक सीधा शंक्वाकार, दोनों सिरों पर चैनल वाला पाइप होता है, जिसे पारंपरिक रूप से एक चिलम पत्थर के साथ मिट्टी को पका कर बनाया जाता है – अन्य पाइपों में स्क्रीन/फिल्टर की तरह–अक्सर कचरे के सीधे अंतर्ग्रहण को रोकने के लिए। फिल्टर पत्थर कस कर लगा, ऊपर से चपटा शंक्वाकार होता है और धुएं के मुक्त रूप से निकलने के लिए जिसके बीच में एक छोटा छिद्र किया जाता है। छोटी चिलम से धुआं सीधे फेफड़ों में जाता है। बड़ी चिलम से, जब धुआं ठंडा हो जाता है, अधिक धुआं फेफड़ों में जाता है। चिलम का धुआं उतना ही विषैला होता है जितना तंबाकू धूमन के अन्य प्रारूपों में। माना जाता है कि चिलम का उद्भव भारत या दक्षिण अमेरिका में हुआ, कम से कम और 18वीं शताब्दी से पहले से भारतीय योगियों द्वारा आध्यात्मिक समूहों में धूम्रपान के सत्रों में प्रयोग किया जाने वाला पुराना साधन है।

'पाइप' में तंबाकू के लिए एक स्थान बना होता है जहां से एक खोखली नली निकलती है, जो माउथपीस में समाप्त होती है। पाइप मशीन से बने अत्यंत साधारण मॉडल से लेकर बहुत महंगे हाथ से बने कारीगरी वाले उपकरण तक नामी पाइप निर्माताओं द्वारा बनाए जाते हैं, जो अक्सर महंगे संकलन उत्पाद होते हैं। धूमन पाइप बनाने के लिए प्रयोग की जाने वाली ब्राअर की लकड़ी *(जाएंट हीदर, एरिका आर्बोरिआ),* जो भूमध्यसागरीय वनों के देशज एक अलंकारिक पौधे से प्राप्त होती है, अत्यंत कठोर और ऊष्मा–प्रतिरोधी होती है और धूम्र की सुवास को प्रभावित नहीं करती। पाइप का धुआं उतना ही विषैला होता है जितना कि तंबाकू धूमन के अन्य प्रारूपों का।

निष्क्रिय /अनैच्छिक धूमन/पर्यावरण धूमन

निष्क्रिय धूमन, धूम्रपान न करने वालों के लिए तंबाकू दहन द्वारा उत्पन्न पदार्थों के साथ अनैच्छिक संपर्क होता है। निष्क्रीय धूमन को रोकने के लिए भारत सकार ने 2008 से सार्वजनिक स्थानों में धूमन को बैन किया है। बहुत बड़ी संख्या में लोगों द्वारा सार्वजनिक स्थानों में धूम्रपान रोकने के नियम को पसंद करने के बावजूद, 5–20 प्रतिशत वयस्क बराबर निष्क्रीय धूम्रपान के संपर्क में हैं। तंबाकू का धुआं खिड़कियों और संवातन तंत्रों से जा सकता है, और धूम्रपान के स्थान से बहुत दूर लोगों को प्रभावित करता है। घर के अंदर तंबाकू के धुएं की मात्रा निश्चित समयावधि में पी गई सिगरेटों या तंबाकू के अन्य प्रारूपों की संख्या, वातावरण की विशालता, संवातन दर और वायु से प्रदूषक निकालने वाली प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है।

धूम्रपान न करने वालों द्वारा अंतर्ग्रहित किए जाने वाले धुएं में धूम्रपान करने वालों के फेफड़ों

तंबाकू धूमन के कुछ अन्य रुपः सिगार, हुक्का, चिलम, पाइप।

(मुख्य प्रवाह) से निकाले गये धुएं और सिगरेट/बीड़ी/सिगार आदि के जलते सिरे से सीधे वातावरण में निकले धुएं में का मिश्रण होता है जबकि धूम्रपान और कश लगाने के बीच निष्क्रिय दहन के दौरान साइडस्ट्रीम धूम्र होता है। रासायनिक रूप से, साइडस्ट्रीम धूम्र के संघटक भिन्न होते हैं और इसमें मेनस्ट्रीम धूम्र की अपेक्षा 2–6 गुना अधिक संघनित पदार्थ प्रतिग्राम हो सकते हैं। इटैलियन नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट के अध्ययन में, सीमित वायु विनिमय वाले गैराज में एक के बाद दूसरी सुलगायी गई तीन सिगरेटों ने एक आइडिल स्थिति के निम्न–उत्सर्जन वाले डीजल इंजन से भी अधिक पार्टीकुलेट पदार्थ उत्सर्जित किया। इसके अलावा, साइडस्ट्रीम धुएं के सृजन के दौरान अधूरे दहन के कारण, सीधे ही मेनस्ट्रीम धूम्र के अंतर्ग्रहण की अपेक्षा कार्सिनोजेन की मात्रा भी अधिक हो सकती है। इंटरनेशनल एजेंसी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर के अनुसार, मेनस्ट्रीम धूम्र की अपेक्षा साइडस्ट्रीम धूम्र के संघनित पदार्थ ने चूहों में काफी अधिक कार्सिनोजेनिक प्रभाव दिखाया। इस प्रकार मेनस्ट्रीम धूम्र की अपेक्षा, साइडस्ट्रीम धूम्र प्रति ग्राम अधिक हानिकारक हो सकता है। यूएस एन्वायरनमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी ने साइडस्ट्रीम तंबाकू के धुएं को एस्बेसटॉस, आर्सेनिक, बेंजीन और रेडॉन के साथ 'क्लास–ए कार्सिनोजेन' वर्गीकृत किया है।

धुआंरहित तंबाकू उत्पाद

दक्षिण अमेरिका और दक्षिणपूर्व एशिया में धुआंरहित तंबाकू उत्पाद हजारों वर्षों से अस्तित्व में हैं। वास्तव में, सुवासित तंबाकू (*जर्दे* के नाम से भी ज्ञात) अति प्राचीन काल से शाही और उच्च वर्ग का आवश्यक अंग रहा है और माना जाता था कि उसमें पाचक गुण होते हैं। तंबाकू के अतिरिक्त, उनमें अक्सर विलक्षण सुवास के लिए मेंथॉल, मसाले और/या विशिष्ट शाक होते हैं। विडंबना है कि इनमें से अधिकांश उत्पादों को मुख शुद्धिकारक की आड़ में बेचा जाता है परिणामस्वरूप इनकी खपत और मांग बढ़ती जाती है। हाल के एक अनुमान के अनुसार, धूम्ररहित इनहेलर्स सहित STPs की वैश्विक बिक्री लगभग तीन डालर बिलियन बढ़ गयी है और लगातार बढ़ती जा रही है। सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल और नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट के अनुसार, विश्व में STP उपभोक्ताओं की लगभग सारी संख्या भारत एवं बांग्ला देश सहित दक्षिणपूर्व एशिया में है जो उपभोक्ताओं का लगभग 80 प्रतिशत है। धूम्ररहित तंबाकू उत्पाद को बिना जलाए खाया जाता है, और इसे मुख या नासिका से लिया जा सकता है। अधिकांश लोग धूम्ररहित तंबाकू को दांतों और गाल/होंठों के बीच रखते हैं और उसे चूसते/चबाते हैं और लार के साथ तंबाकू के मिलने से बने काले टार जैसे पदार्थ को थूक देते हैं। यह अत्यंत विषैला पदार्थ मुख की भित्ति के जरिए तेजी से रक्त प्रवाह में अवशोषित हो जाता है, जो धूम्रपान की अपेक्षा कहीं ज्यादा हानिकारक होता है।

भारत में, खाना खाने के बाद मुख शुद्धि कारक खाने की परंपरा नियमित डेंटल हाइजिन उपलब्ध होने से बहुत पहले से सदियों पुरानी है। आयु, शिक्षा या आर्थिक स्तर के अनुसार मुख शुद्धि, मूड बनाने, थकान दूर करने और/या तनावरोधी अनुभव के भ्रम में दिन भर इन उत्पादों को चबाना आम बात है। कुछ लोगों द्वारा सुरक्षित विकल्प के रूप में प्रचारित, STPs कोई सुरक्षित नहीं सिद्ध हुए हैं। उपभोक्ता धुआं उत्सर्जित करने वाली तंबाकू के मुकाबले STPs को सुरक्षित समझते हैं क्योंकि इनसे तंबाकू के धुएं जैसा पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता या दूसरों के लिए निष्क्रिय धूम्रपान जैसी समस्या पैदा नहीं होती, इसे 'नो स्मोकिंग क्षेत्र' में भी प्रयोग किया जा सकता है, और सबसे बड़ी बात, उपभोक्ता के हाथ कोई भी काम करने के लिए स्वतंत्र होते हैं क्योंकि इसे खाते समय हाथ में नहीं पकड़ना पड़ता। वैश्विक रूप से, व्यापारिक स्तर पर

तंबाकू युक्त पदार्थ अनेक किस्मों में उपलब्ध हैं। कुछ STP का विवरण, जिनसे अक्सर 100 सिगरेटों के बराबर निकोटिन मिलता है, नीचे दिया गया है।

जर्दा : तंबाकू की पत्तियों को प्राकृतिक सुवास और शाकों के साथ सिझाया जाता है और मुक्त चूने के साथ बेचा जाता है।

किवाम/किमाम: शुद्धिकृत तंबाकू को जाफरान *(क्रोकस सटाइवस* या सैफ्रॉन क्रोकस के फूलों से प्राप्त मसाला) और स्वाद एवं सुवास के लिए कुछ अन्य मसालों के साथ मिलाया जाता है। पान की गिलौरी में भी एक घटक के रूप में प्रयोग किया जाता है, इसका प्रभाव मादक होता है।

खैनी/आर्द्र सुंघनी : अपरिष्कृत/सुवासित चबाने वाली तंबाकू जिसमें खाने वाले खाने से पहले हथेली में चूना मिलाते हैं और होंठ और मसूढ़ों के बीच दबा लेते हैं।

नस्वार, जिसे *सुंघनी* भी कहते हैं : काले और हरे रंग के चूर्ण, पेस्ट या केक के रूप में उपलब्ध, लोग अधिकतर काली नस्वार (काली सुंघनी) का प्रयोग करते हैं, जिसे शुष्क तंबाकू, लकड़ी की राख और चूने को पीस कर, लगभग 20–25 मिनट तक पानी मिला कर जब तक पेस्ट नहीं बन जाता, चला कर, 2–3 ग्राम के गोले बनाये जाते हैं। शुष्क चूर्ण को नाक से अंतर्ग्रहित या सूंघा जाता है।

गुटका/गुटखा: परिष्कृत तंबाकू, सुपारी, कत्था, बुझा चूना, सुवासकारी और सुगंधकारी यौगिक युक्त इस जेनेरिक नाम वाले उत्पाद को छोटे पैकेटों में *चूर्ण/दानेदार* रूप में बेचा जाता है।

पान मसाला : यह मुख्यतः सुपारी, बीजों, शाकों और मसालों का मिश्रण होता है। पान मसाले में सौंफ के दाने मूल घटक होते हैं और शर्करा की परत चढ़े तिल, सौंफ और धनिए के बीज, पुदीने की पत्तियां, इलायची, चूर्णित चूना, मेंथॉल, कत्था और सुपारी होते हैं। सुवासकारी जैसे कि चंदन का तेल, *केवड़ा (पेंडानस ऑडोरेटिसिमस)* भी मिलाए जाते हैं। चबाने वाला पान मसाला भारत, मध्य पूर्व और दक्षिणपूर्व एशिया के भागों में लोकप्रिय है और आतिथ्य तथा मित्रता समानता दिखाने के लिए परोसा जाता है। तंबाकू उत्पाद मिश्रित पान मसाले के मिश्रणों पर चिंता जतायी गयी है।

पान की गिलौरी/*पान* : पान की गिलौरी, तंबाकू या बिना तंबाकू के, पानी में *अकेसिया* प्रजाति की अंतःकाष्ठ से निष्कर्षित लाल–भूरे कषाय पदार्थ कत्थे और कटी सुपारी का मिश्रण होता है जिसे पान *(पाइपर बीटल)* की चूना लगी पत्तियों में लपेटा जाता है। स्थानीय या व्यक्तिगत स्वाद के अनुसार मसाले (दालचीनी, इलायची, जाफरान, लौंग, सौंफ, ऐनिस के बीज), मधुरक (नारियल, शुष्क खजूर, *गुलकंद*), सुवासकारी तेल (गुलाब, चंदन, जिरैनियम, लिनालूल) और खुश्बू (गुलाब जल/अर्क/पत्तियां, मेंथॉल, पुदीना) मिलाए जाते हैं। तंबाकू रहित गिलौरी को प्राकृतिक मुख शुद्धि कारक समझाा जाता है और आगुंतकों को परोसा जाता है। हाल के अनुमान के अनुसार, विश्व भर में ~600 मिलियन लोग पान की गिलौरी चबाते हैं और यह तंबाकू, अल्कोहल और कैफीनयुक्त पेयों के बाद चौथा सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला उद्दीपक और मनोसक्रिय पदार्थ है। एशिया के भागों में, पान की गिलौरी को दांत के दर्द से लेकर एक्ने तक के हर्बल इलाज के रूप में प्रयोग किया जाता है और यह भी माना जाता है कि इसमें कामोत्तेजक गुण होते हैं।

धूम्र और धूम्ररहित तंबाकू के प्रमुख घातक घटक

तंबाकू का धुआं 4,700 से अधिक घातक रसायनों से बना सक्रिय, असमांगी और जटिल मिश्रण होता है जिसमें से 70 ज्ञात कार्सिनोजेन और गैसों (लगभग 60%) तथा कणों (लगभग 40%) के रूप में 400 से अधिक अन्य घटक विषकारी तंबाकू से बने उत्पादों के जलने से उत्पन्न होते हैं और ये रसायन/योजक चाहे/अनचाहे लोगों के ऊतकों पर सीधे क्रिया करते हैं, एंजाइमों की प्रक्रिया में बाधा पहुंचाते हैं, या परोक्ष रूप से समय के साथ पर्यावरण के तत्वों के साथ क्रिया करते हैं।

बेटल वेल (पाइपर बेला) की खेती, सटे हुए बेड़े के पत्ते (इनसेट) संघटक और बेड़े की तैयारी

तंबाकू के धुएं के प्रमुख घातक संघटकों में एक प्रबल व्यसनक, मनोसक्रिय पदार्थ निकोटिन, जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक निर्भरता उत्पन्न करता है; कार्बन मोनोऑक्साइड, एक रंगहीन, गंधहीन और स्वादहीन विषैली गैस जो हीमोग्लोबिन के लिए अपनी उच्च आकर्षण के कारण सीधे ही ऊतकों को क्षतिग्रस्त/हाइपॉक्सिया करती है; और सात सबसे महत्वपूर्ण कार्सिनोजेन (1,3 ब्यूटाडीन, एसिटल्डिहाइड, एक्रोलीन, एक्रीलोनाइट्राइल, इथिलीन ऑक्साइड, फार्मेल्डिहाइड, आइसोप्रीन), शामिल हैं, जो हमारे रक्त प्रवाह में सरलता से अवशोषित हो जाते हैं और डीएनए को क्षति पहुंचाते हैं – कैंसर का प्रमुख कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त, तंबाकू के धुएं में बेंजोपाइरीन, डाइबेंजोएन्थ्रासीन, नाइट्रोसामीन, और टार जैसे अन्य अनेक सुनिश्चित कार्सिनोजेन होते हैं। धुएंरहित तंबाकू में बेंजो[a]पाइरीन सहित 28 से अधिक कैंसर उत्पन्न करने वाले कारक और अन्य पॉलीसाइक्लिक सगंध हाइड्रोकार्बन और कुछ रेडियो सक्रिय पदार्थ ज्ञात हैं, और सिगरेट की अपेक्षा इसमें 15 गुना अधिक निकोटीन होता है।

तंबाकू के उपयोग से स्वास्थ्य पर होने वाले प्रमुख विपरीत प्रभाव

कैंसर से होने वाली 30 प्रतिशत मौत का कारण धूम्रपान होता है, लगभग 90 प्रतिशत मृत्यु फेफड़ों और लगभग 75 प्रतिशत मृत्यु चिरकालिक ब्रोंकाइटिस एवं एन्फिसीमा के कारण होती हैं। सक्रिय धूम्रपान की अपेक्षा निष्क्रिय धूम्रपान को ज्यादा खतरनाक समझा जाता है, क्योंकि व्यक्ति धूम्रपान करने वालों के विषैले निक्षेपों को अंतर्ग्रहित कर लेता है। धूम्रपान करने वालों के साथ रहने वाले धूम्रपान न करने वाले, कभी एक भी सिगरेट का धूमन न करने के बावजूद निष्क्रिय/वातावरणीय तंबाकू के धुएं का अंतर्ग्रहण करते हैं और उनमें फेफड़ों के कैंसर का खतरा 20–30 प्रतिशत बढ़ जाता है। धूम्रपान ;सक्रियधनिष्क्रियद्ध के बच्चों के विकास एवं वृद्धि के दौरान विपरीत प्रभाव हो सकते हैं। करोड़ों बच्चे अपने गर्भ काल से ही अनचाहे ही, लगातार खतरनाक निष्क्रिय धूम्रपान के संपर्क में रहते हैं। चूंकि बच्चों में वयस्कों की अपेक्षा वायु की निर्गमन दर अधिक होती है, ये उनसे संपर्क के दौरान अधिक मात्रा ग्रहण करते हैं क्योंकि वे शारीरिक भार के आधार पर अधिक प्रदूषित तत्वों को अंतग्रहित करते हैं। सक्रियधनिष्क्रिय तंबाकू धूमन के संपर्क में रहने वाली दूध पिलाने वाली माताओं के दूध में इसके अनेक घटक (निकोटीन, बेंजीन, फार्मेल्डीहाइड, सायनाइड, कार्बन मोनोऑक्साइड आदि) होते हैं जो पोषित बच्चे में स्थानांतरित हो सकते हैं और विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं। मां के धूम्रपान करने से भी मां के दूध के संघटन में परिवर्तन आ सकता है और दूध उत्पादन में कमी के साथ प्रोलैक्टिन कम हो सकता है जिससे दूध छुड़ाना पड़ सकता है। सभी प्रकार के STPs और निकोटिन समूचे मानव शरीर के लिए अत्यंत विषैले होते हैं। इसके अतिरिक्त, किसी भी रूप में लंबे समय तक तंबाकू का उपयोग, कैंसर और अनेक अन्य स्वास्थ्य संबंधी खतरे लाता है।

नोटः इस लेख में निहित सूचना का उद्देश्य केवल शैक्षिक है और कोई चिकित्सीय सलाह, निदान, उपचार या किसी भी प्रकार के निजी स्वास्थ्य संबंधी निर्देश प्रदान करना नहीं है, जो किसी विशेषज्ञ से ही सीधे प्राप्त की जा सकती हैं।

(अनुवादः विनीता सिंघल) ■

पर्किन्सन्स रोग
वह सब कुछ जो आप जानना चाहते हैं

डॉ यतीश अग्रवाल

पर्किन्सन्स रोग आमतौर से 50 और 65 वर्ष की उम्र में आरंभ होता है, इस आयु वर्ग के लगभग एक प्रतिशत को प्रभावित करता है; यह कुछ हद तक स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है। वर्तमान अनुमान के अनुसार देश में 1.36 मिलियन लोग इससे प्रभावित हैं। यह बढ़ रहा है और इसके बढ़ने का कारण बढ़ती आयु प्रत्याशा और प्रदूषित पर्यावरण का बढ़ना है।

अधिकतर चलने–फिरने से संबंधित समझा जाने वाला, पर्किन्सन्स रोग एक जटिल तंत्रिकीय अवस्था है जो जीवन के अनेक क्षेत्रों में फैल जाता है। अधिकतर वृद्ध लोगों को होने वाला यह रोग, युवा वयस्कों में भी मिल सकता है। इसके आरंभिक लक्षण अक्सर दिखायी नहीं देते – एक पैर में कमजोरी या कड़ापन, एक हाथ में हल्का सा कंपन जब यह आराम की मुद्रा में हो या चलने या बिस्तर में करवट लेते समय धीमी गति। इस रोग में संभावित रूप से, हिलना या प्रकंपन बदतर हो जाता है और फैल जाता है, मांसपेशियां कठोर हो जाती हैं, गति धीमी हो जाती है और संतुलन एवं तालमेल कमजोर हो जाता है।

ये लक्षण मध्य मस्तिष्क के, शरीर की गतियों को नियंत्रित करने वाले भाग में तंत्रिका कोशिकाओं के धीरे धीरे नष्ट होने का परिणाम होते हैं। जैसे जैसे रोग बढ़ता है, सोचने की प्रक्रिया, स्मृति और भावनाएं सभी प्रभावित हो सकती हैं जिससे बौद्धिकता में कमी, अवसाद, और अन्य मानसिक या भावनात्मक समस्याएं होती हैं।

पर्किन्सन्स रोग आमतौर से 50 और 65 वर्ष की उम्र में आरंभ होता है, इस आयु वर्ग के लगभग एक प्रतिशत लोगों को प्रभावित करता है; यह कुछ हद तक स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है। वर्तमान अनुमान के अनुसार देश में 1.36 मिलियन लोग इससे प्रभावित हैं। यह बढ़ रहा है और इसके बढ़ने का कारण बढ़ती आयु प्रत्याशा और प्रदूषित पर्यावरण का बढ़ना है।

पर्किन्सन्स प्रगामी रोग है, इसका पैटर्न विस्तृत होता है। हालांकि अलग अलग लोगों के लिए इसकी गति भिन्न होती है, परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होते हैं। आमतौर से लक्षण समय के साथ बदतर होते जाते हैं और इस दौरान नए लक्षण संभवतः

दिखने लगते हैं। यद्यपि कोई भी इलाज इस रोग को ठीक नहीं कर सकता, चिकित्सा इसके लक्षणों का उपचार कर सकती है और अपंगता को कम कर सकती है।

पर्किन्सन्स सदैव जीवन पर्यन्त प्रभावित नहीं करता। हालांकि, यह जीवन को बुरी तरह बदल देता है। लगभग 10 वर्षों के बाद, अधिकांश लोगों को कम से कम एक प्रमुख समस्या होती है, जैसे कि उच्चतर बौद्धिक प्रक्रिया या शारीरिक अपंगता।

कैसे होता है पर्किन्सन्स रोग?

शारीरिक गतिविधियां मस्तिष्क के बेसल गैंग्लिया नामक भाग द्वारा संचालित होती हैं, जिनकी कोशिकाओं को डोपामीन और एसिटिलकोलीन नामक दो रासायनिक प्रबंधकों के संतुलन की जरूरत होती है जो तंत्रिका संवेदों के संचरण में शामिल होते हैं। पर्किन्सन्स रोग में, डोपामीन बनाने वाली तंत्रिका कोशिकाएं (न्यूरॉन) टूटने या नष्ट होने लगती हैं। परिणामस्वरूप, डोपामीन का स्तर घट जाता है। इससे मस्तिष्क की गतिविधि असामान्य हो जाती है, और पर्किन्सन्स रोग के लक्षण प्रकट होते हैं।

लेखक नई दिल्ली स्थित सफदरजंग अस्पताल में चिकित्सक और प्रोफेसर हैं। उन्होंने स्वास्थ्य से जुड़ी 47 लोकप्रिय पुस्तकें लिखी हैं।
ई-मेलः dryatish@yahoo.com

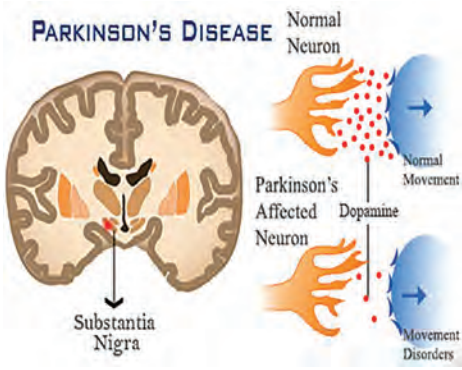

पर्किन्सन्स रोग का कारण अज्ञात है, लेकिन अनेक कारक इसमें भूमिका निभाते हैं, जैसे कि:

आनुवंशिक त्रुटि

दर्जन भर से अधिक जीन उत्परिवर्तन, पर्किन्सन्स रोग के सुपरिचित प्रारूपों से संबंधित बताए गए हैं। हालांकि, आम लोगों में, ये त्रुटियां बहुत कम कम होती हैं।

कुल मिलाकर, पर्किन्सन्स रोग के कुल रोगियों में से 10 प्रतिशत से भी कम में रोग को आनुवंशिक असामान्यताओं द्वारा बताया जा सकता है।

पर्यावरणीय परिवर्तन

कुछ विषैले या पर्यावरणीय कारक ढलती आयु में पर्किन्सन्स रोग के विकास के खतरे को बढ़ा सकते हैं। इन कारकों में कुछ विषाणु संक्रमणों का होना अथवा कीटनाशक, कार्बन मोनोऑक्साइड या धात्विक मैंगनीज जैसे पर्यावरणीय टॉक्सिन के संपर्क में आना शामिल है।

हालांकि, पर्किन्सन्स के अधिकतर रोगियों में कारण का पता लगाना कठिन है।

मस्तिष्क के रहस्यमय परिवर्तनों को सुलझाना

कुछ शोधकर्ताओं ने पर्किन्सन्स रोग के रोगियों के मस्तिष्क में कुछ परिवर्तन देखे हैं, हालांकि, ये परिवर्तन क्यों होते हैं, इसका आधार और क्रियाविधि अब भी स्पष्ट नहीं है, लेकिन उनमें इसके कारण और संभावित उपचार की कुंजी हो सकती है। इन परिवर्तनों में शामिल हैं:

तंत्रिका कोशिकाओं में लेवी पिंड

लेवी पिंड, पर्किन्सन्स रोग, लेवी बॉडी डिमेंशिया और कुछ अन्य बीमारियों में तंत्रिका कोशिकाओं में विकसित होने वाले प्रोटीन के असामान्य क्लम्प या समुच्चय होते हैं। जब मस्तिष्क ऊतकों की जांच माइक्रोस्कोप के नीचे की जाती है, तब इनकी पहचान होती है। ये गोलाकार पिंड के रूप में दिखते हैं जो अन्य कोशिका घटकों को विस्थापित कर देते हैं, और ब्रेनस्टेम (सब्सटेंशिया नाइग्रा के अंदर) या कॉर्टेक्स के अंदर भी पाए जा सकते हैं। कोशिका में अपवलित प्रोटीनों के समुच्चयों के प्रतीक लेवी पिंड तब बनते हैं जब कोशिका का प्रोटीन अपक्षय तंत्र दब जाता है। शोधकर्ताओं का विश्वास है कि ये लेवी पिंड पर्किन्सन्स रोग के कारण का महत्वपूर्ण संकेत हो सकते हैं।

ए–सिन्यूक्लीन प्रोटीन

जैव शोधकर्ताओं को विश्वास है कि लेवी पिंड में पाए जाने वाले अनेक पदार्थों में से एक एल्फा–सिन्यूक्लीन (ए–सिन्यूक्लीन) नामक महत्वपूर्ण प्राकृतिक और व्यापक प्रोटीन है। वह वर्तमान में पर्किन्सन्स रोग शोधकर्ताओं के बीच आकर्षण का केन्द्र है, और सभी लेवी पिंडों के अंदर पाया गया है।

जोखिम कारक

कुछ कारक, जो अधिकांशतः किसी के भी नियंत्रण के बाहर होते हैं, पर्किन्सन्स रोग की उत्पत्ति को उत्तेजित करते हैं। इन कारकों में शामिल हैं:

अधेड़ से ढलती उम्र तक

युवा वयस्कों में पर्किन्सन्स रोग कम ही होता है। यह साधारणतया मध्य या ढलती आयु में आरंभ होता है और उम्र के साथ खतरा बढ़ता जाता है। आमतौर पर रोग लगभग 60 वर्ष या उससे अधिक आयु में विकसित होता है।

आनुवंशिकता

किसी निकट संबंधी में पर्किन्सन्स रोग होने पर इसकी संभावना बए जाती है। हालांकि, आप को तब तक खतरा कम ही है जब तक आपके परिवार में अनेक संबंधी पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित नहीं हैं।

लिंग

महिलाओं की अपेक्षा पर्किन्सन्स रोग पुरुषों में अधिक होता है।

टॉक्सिन से संपर्क

कुछ विशिष्ट शाकनाशियों और कीटनाशियों के साथ लंबे समय तक संपर्क से पर्किन्सन्स रोग का खतरा कुछ बढ़ जाता है।

समरूप की पहचान

अनेक परिस्थितियां ऐसे लक्षण उत्पन्न कर सकती हैं जो पर्किन्सन्स रोग के लक्षणों से मिलते जुलते हो सकते हैं। इन लक्षणों की पहचान करना अनिवार्य होता है क्योंकि इनमें से कुछ विशिष्ट उपचार या चिकित्सा के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया दिखा सकते हैं। इन समरूपों में शामिल हैं:

कुछ उपचारों के बुरे प्रभाव

नुस्खे में लिखी कुछ दवाइयां विपरीत प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकती हैं जो पर्किन्सन्स रोग से संबंधित लक्षणों से काफी मिलती हैं। इन उपचारों में विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक बीमारियों में दी जाने वाली अनेक एंटीसाइकोटिक जैसे कि क्लोरप्रोमाजीन, प्रोमाजीन, हेलोपेरिडॉल, पर्फिनाजीन, फ्लुफीनाजीन, पाइमोजाइड और रिसपेरडॉन; मेटोक्लोप्रामाइड, लीवोसल्पादराइड, क्लीबोप्राइड, आइटोप्राइड, डॉमपेरीडॉन सहित जठरांत्र संबंधी चरता औषधियां जिनका प्रयोग अक्सर जुगुप्सा, वमन और अपच के उपचार में होता है; वालप्रोइक अम्ल जैसी मिरगी रोधी; भीतरी कान और संतुलन को प्रभावित करने वाली समस्याओं जैसे कि चक्कर आना, के उपचार में प्रयुक्त सिन्नाराजीन और फ्लुनारीजीन जैसी एंटीहिस्टामीन एवं कैल्सियम चैनल ब्लॉकर्स; और बायपोलर रोग में दी जाने वाली अवसादरोधी लिथियम शामिल हैं।

इन हानिकारक दवाइयों को लेना बंद कर देने और बदल देने से व्यक्ति को पर्किन्सन्स जैसे लक्षण प्रेरित न होने से आराम मिलता है।

अवैध दवाइयों का उपयोग

मीथैम्फीटामीन या स्पीड

'मेथ' या 'स्पीड' के नाम से ज्ञात हाइड्रोक्लोराइड मीथैम्फीटामीन एक व्यसनी, जल में विलेय केंद्रीय तंत्रिका तंत्र उद्दीपक होता है जो चूर्णिल, 10 से 15 मिग्रा की गोलियों या कैप्सूल के संपीडित प्रारूप में मिलता है, या शुद्ध क्रिस्टलीय रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे विभिन्न वांछनीय प्रभावों के लिए ड्रग लेने वालों द्वारा लिया जाता है: यूफोरिया और स्वस्थ लगने की भावना, शारीरिक क्रिया और ऊर्जा को बढ़ाना, और चिंता में कमी लाना; यह औषधि लेने के तुरंत बाद प्रभावी होती है और कई घंटों बाद समाप्त होती है। औषधि अनेक विपरीत प्रभाव उत्पन्न कर सकती है और लंबे समय के बाद पर्किन्सन्स रोग उत्पन्न कर सकती हैं।

एमपीटीपी

हाल ही में, एक स्ट्रीट–ड्रग संदूषक भी सामने आया है जो ड्रग लेने वालों में पार्किन्सन का कारण बन सकता है। केलिफोर्निया, मेरीलैंड और वैनकुवर, ब्रिटिश कोलम्बिया में ड्रग लेने वालों में एमपीटीपी–प्रेरित पार्किन्सोनिज्म का प्रकोप पाया गया है। लोगों में एमपीटीपी–प्रेरित पार्किन्सोनिज्म विलक्षण रूप से इडियोपैथिक पर्किन्सन्स रोग के समान होता है। इसमें पर्किन्सन्स रोग के सभी प्रमुख क्लीनिकल लक्षण मौजूद होते हैं: चलने में सामान्यीकृत विलंबन और चलने में कठिनाई, अनम्यता, बैठे बैठे कंपन, झुकी हुयी भंगिमा, और भंगिमा संबंधी प्रतिक्रिया में कमी।

अन्य अवस्थाएं

तंत्रिकीय और अन्य अवस्थाओं का जमघट भी किसी व्यक्ति में पार्किन्सन जैसे लक्षण उत्पन्न कर सकता है। इन अवस्थाओं में शामिल हैं:

- पर्यावरण में मॉजूद टॉक्सिन से सम्पर्क
- स्ट्रोक
- थायरॉयड और पैराथायरॉयड रोग
- बारंबार हेड ट्रॉमा (उदाहरण के लिए मुक्केबाजी और बार–बार सिराघात (concussion) से संबंधित ट्रॉमा)
- ब्रेन ट्यूमर
- मस्तिष्क के चारों ओर द्रव की अधिकता (हाइड्रोसिफेलस)
- संक्रमण के कारण मस्तिष्क में सूजन (एनसिफेलाइटिस)
- अल्झेमीर, लेवी बॉडी रोग, ब्रयूट्ज्फेल्ट–जेकब रोग, विल्सन्स रोग, और हन्टिंगटन रोग समेत मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं

लक्षणों और संकेतों की पहचान

पर्किन्सन्स रोग संचलन से संबंधित रोग है जो धीरे धीरे बढ़ता है। लक्षण और संकेत हर व्यक्ति में भिन्न हो सकते हैं। आरंभिक लक्षण हल्के हो सकते है और अनदेखे रह सकते हैं। अक्सर लक्षण आपके शरीर के एक भाग में शुरू होते हैं और आमतौर से जब लक्षण दोनों ओर प्रभावित करना शुरू करते हैं तो उस ओर बहुत खराब हो जाते हैं। कुछ लोग पहले कमजोरी, चलने में कठिनाई और मांसपेशियों के कड़ेपन का अनुभव करते हैं। अन्य हाथों और सिर में कंपन का अनुभव कर सकते हैं। पर्किन्सन्स रोग के सामान्य लक्षण और संकेत इस प्रकार हैं:

प्रकंपन

आमतौर से अंगों में, अक्सर हाथों या उंगलियों में थरथराहट या कंपन शुरू होता है। पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित व्यक्ति को अंगूठा और तर्जनी को आगे–पीछे रगड़ते देखा जा सकता है, इसे पिल–रॉलिंग कंपन कहते हैं।

पर्किन्सन्स रोग का अन्य अभिलक्षण है हाथ में कंपन जब हाथ आराम की स्थिति में होता है।

स्वैच्छिक गतियों में धीमापन

समय के साथ, पर्किन्सन्स रोग व्यक्ति की चलने की क्षमता को कम कर देता है और उसकी गतिविधियों में कमी आ जाती है जिससे साधारण काम भी करना कठिन हो जाता है और उसमें समय बहुत लगता है। आपको कुर्सी से उठना, बिस्तर में करवट लेना कठिन हो जाता है, और जब आप चलते हैं, आपके कदम छोटे हो जाते हैं।

छोटे कदमों के अलावा, आप जब चलने की कोशिश करते हैं तो पैरों को घसीटते हैं, जिससे चलना कठिन हो जाता है। रगड़ते कदमों के साथ हाथ का ठीक से न झूलना एवं झुकी हुई भंगिमा, पर्किन्सन्स रोग के विशिष्ट लक्षण हैं।

कड़ी मांसपेशियां

शरीर के किसी भी भाग की मांसपेशियां कड़ी हो सकती हैं। धड़ और अग्रांगों में असाधारण तनाव या कड़ापन प्रचलन को सीमित कर देता है और दर्द होता है।

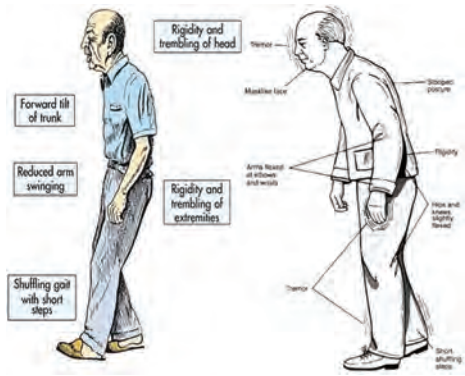

अस्थिर संतुलन

पर्किन्सन्स रोग के परिणामस्वरूप, आपको ऐसी समस्याएं हो सकती हैं जिससे शरीर का संतुलन प्रभावित होता है।

स्वचालित गति में ह्रास

पर्किन्सन्स रोग में, आप में पलक झपकना, मुस्कराना या चलते समय बाहों का झूलना जैसी अवचेतन गतियों की क्षमता में कमी हो सकती है। चेहरे की अभिव्यक्ति की कमी, चेहरे को मास्क बना देती है।

बोलने में कठिनाई

पर्किन्सन्स रोग के परिणामस्वरूप आपको बोलने में कठिनाई आ सकती है। आप धीरे से, तेजी से या अस्पष्ट बोलते हैं, बोलने से हिचकिचाते हैं। आपकी बात स्वाभाविक उतार चढ़ाव के बिना एकस्वरी हो सकती है।

लिखाई में परिवर्तन

जैसे–जैसे लक्षण बढ़ते हैं, लिखना बहुत कठिन हो जाता है, और आपकी लिखाई छोटी और अनियमित दिखने लगती है।

निगलने में कठिनाई

जैसे जैसे आपकी अवस्था बिगड़ती है, आपको निगलने में कठिनाई होने लगती है। धीरे धीरे निगलने के कारण आपके मुख में लार इकट्ठी होने लगती है और लार गिरने लगती है।

नींद संबंधी समस्याएं और निद्रा रोग

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित लोगों में अक्सर नींद संबंधी समस्याएं होती हैं जैसे सारी रात बार बार उठना, जल्दी जागना या दिन में भी सोना।

लोगों को रेपिड आई मूवमेंट निद्रा रोग भी हो सकता है, जिसका आपके सपनों पर प्रभाव होता है। चिकित्सा आपकी नींद संबंधी समस्याओं में सहायक हो सकती है।

मूत्राशय की समस्याएं

पर्किन्सन्स रोग से मूत्राशय संबंधी समस्याएं हो सकती हैं जिससे मूत्र को नियंत्रित करना या मूत्र त्याग करना कठिन हो जाता है।

कब्ज

पर्किन्सन्स रोग से बहुत से लोगों में मुख्यतः पाचन तंत्र में धीमी क्रमाकुंचन क्रिया के कारण कब्ज हो जाता है।

रक्तचाप में परिवर्तन

कुछ लोग पर्किन्सन्स रोग के कारण खड़े होने पर उद्भ्रांत या चक्कर या बेहोशी अनुभव करते हैं। ऐसा अचानक रक्तचाप कम होने के कारण होता है। इस अवस्था को ऑर्थोस्टेटिक हाइपोटेन्शन कहते हैं।

गंध दुष्क्रिया

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित व्यक्ति अपने गंध संवेदन के साथ समस्या का अनुभव करता है। उन्हें कुछ विशिष्ट गंधों की पहचान करने या उनके बीच अंतर में कठिनाई होती है।

थकान

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित बहुत से लोगों में ऊर्जा की कमी हो जाती है और वे थकान का अनुभव करते हैं, और हमेशा कारण का पता नहीं चलता।

दर्द

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित बहुत से लोग पूरे शरीर में या शरीर के कुछ भागों में दर्द का अनुभव करते हैं।

यौन दुष्क्रिया

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित कुछ लोग यौन इच्छा या निर्वहन में कमी का अनुभव करते हैं।

बौद्धिक और भावनात्मक दुष्क्रिया

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित व्यक्ति उच्च सेरेब्रल क्रिया में ह्रास का सामना करता है और अवसादिक एवं भावनात्मक परिवर्तनों से पीड़ित हो सकता है।

चिंतन में कठिनाइयां

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित कुछ लोग चिंतन में कठिनाइयां, स्मृति ह्रास, और परिज्ञानशीलता में अपक्षय का अनुभव कर सकते है। ऐसा अक्सर पर्किन्सन्स रोग की अंतिम अवस्थाओं में होता है। दुर्भाग्यवश, ऐसी परिज्ञानशील समस्याओं पर चिकित्सा का बहुत प्रभाव नहीं होता।

भावनात्मक परिवर्तन एवं अवसाद

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित लोगों में भावनात्मक परिवर्तन हो सकते हैं, जैसे कि कंपन, उत्तेजना या

प्रोत्साहन की कमी। डॉक्टर इन लक्षणों का उपचार करने के लिए चिकित्सा दे सकता है।

पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित कुछ लोग अवसाद से पीड़ित हो सकते हैं। इसके लिए मानसिक स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों की व्यवस्था में प्रशिक्षित विशेषज्ञ डॉक्टर, मनोचिकित्सक की सलाह की जरूरत होती है। अवसादरोधी गोलियों समेत सुझाये गए उपचार से व्यक्ति की भावनाओं को व्यवस्थित करना संभव हो सकता है, साथ ही पर्किन्सन्स रोग की चुनौतियों का भी सामना किया जा सकता है।

कुल मिला कर, सामान्य नियमानुसार, पर्किन्सन्स रोग में लक्षण और संकेत समय के साथ बदतर होते जाते हैं। ऐसा कोई उपचार नहीं है जो रोग की प्रगति को रोक सके या रोग निवारण कर सके। फिर भी, पर्किन्सन्स रोग से पीड़ित लोग, किसी विशेषज्ञ चिकित्सक, विशेषतया तंत्रिकाविज्ञानी की सलाह से चिकित्सा लेकर जीवन को बेहतर बना सकते हैं। बहुत से लोग अनेक वर्षों तक उपयोगी और खुशियों से भरा जीवन जी सकते हैं।

(अगले अंक में: पर्किन्सन्स रोग के साथ जीवन)

(अनुवादः डॉ. विनीता सिंघल) ■

दो मुख्य जीव, जिनमें धरती को बचाने की क्षमता है (पृष्ठ 7 का शेषांश)

कम करें, Reuse यानी दोबारा इस्तेमाल करें तथा Recycle यानि पुनर्चक्रण करें। विशाल आंकड़ों तथा सांख्यिकी के अनुसार जलवायु परिवर्तन की रोकथाम के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण फैसले जो हम उठा सकते हैं निम्नलिखित हैं:

1. अंतरराष्ट्रीय हवाई यात्रा से परहेज करें, या कम करें, क्योंकि ऐसी हवाई यात्रा में प्रति व्यक्ति कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन सर्वाधिक होता है। इसी प्रकार घरेलू हवाई यात्रा में भी कमी लाएं। अपने झूठे अहंकार तथा घमंड का त्याग करें। आपके पर्स में पाया जाने वाला विमान टिकट ये सुनिश्चित करता है कि आपका उन दो महत्त्वपूर्ण जीवों के विनाश में सर्वाधिक योगदान है। अगर आप विमान यात्रा नहीं करेंगे तो क्या होगा? विमान यात्रा की अपने सहकर्मियों तथा दोस्तों को प्रभावित करने से अधिक शायद ही कोई अहमियत हो। आपके पासपोर्ट पर लगे ठप्पे सिर्फ यही इंगित करते हैं कि जितने अधिक ठप्पे होंगे उन दो महत्त्वपूर्ण जीवों के विनाश में आपका उतना ही अधिक योगदान होगा। (फाइलोजेनेटिक्स के सबसे प्रसिद्ध विद्वान विली हेन्निग, जो सांख्यिकीवेत्ता, आनुवंशिकी विज्ञानी, विकासपरक जीव वैज्ञानिक तथा अभिकलनात्मक जटिलता वैज्ञानिक थे, कभी जर्मनी के बाहर नहीं गए। इसका क्या असर पड़ा? कुछ भी नहीं।)

2. सुपरमार्केट या कार्यस्थल टहलते हुए या साइकिल से जाएं। मैं अपने कार्यस्थल पर साइकिल से जाता हूं, जबकि मेरे विश्वविद्यालय के कई छात्र बड़ी गाड़ियों में आते हैं। साइकिल से आपको दो फायदे हैं। सबसे पहले आप इन दो महत्त्वपूर्ण जीवों की रक्षा कर दुनिया को बचाने में योगदान दे रहे हैं और दूसरा, आपका अपना स्वास्थ्य अच्छा रहता है तथा आपकी आयु लम्बी होती है।

3. हमेशा जन परिवहन का प्रयोग करें। आवागमन के लिए ट्रेन अच्छा विकल्प है। बस भी। एक बार फिर कार से यात्रा करने का अपना अहंकार समुद्री जीवों की सुरक्षा के लिए बलि चढ़ा दें। मुझे उम्मीद है कि इस आलेख के बाद कार रखना आपके लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं होगा।

4. अन्य महत्त्वपूर्ण उपायों में शामिल हैं: पानी की बोतल स्थानीय पानी से भरें, बजाय बोतलबंद पानी खरीदने के। क्योंकि इनके उत्पादन में काफी जीवाश्म ईंधन का प्रयोग होता है। प्लास्टिक की सामग्रियों का न्यूनतम प्रयोग करना तथा 'माइक्रोप्लास्टिक्स' से बनी प्रसाधन सामग्रियों के उपयोग से बचना, क्योंकि इनका असर समुद्री जीवन पर पड़ता है, जिनमें शायद वे दो महत्त्वपूर्ण जीव भी शामिल हैं। 'स्थानीय परिधान का प्रयोग करें', गर्मियों में वातानुकूलन के नुकसानों से बचने के लिए नेकटाई के साथ सूट का प्रयोग बंद करें तथा भारतीय एवं स्थानीय परिधान धारण करें। ट्रेन में एसी3 के बजाय स्लीपर क्लास में यात्रा करें, स्थानीय उत्पादों का उपयोग करें, आयरन के प्रयोग से बचने के लिए सिलवट रहित कपड़ों का प्रयोग करें, इत्यादि।

प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक पौल एरलिच के अनुसार, जलवायु परिवर्तन एक विमान दुर्घटना की तरह कार्य करता है। सबसे पहले इसकी हाइड्रोलिक व्यवस्था नाकाम होती है। फिर एक इंजन कार्य करना बंद करता है। यात्रियों को तब तक कुछ भी अजूबा नहीं लगता, जब तक पंखों पर लगा कोई नट नहीं टूटता, वायुगति विज्ञान नाकाम हो जाता है और यात्रियों को अतिरिक्त हलचल महसूस होती है। लेकिन तब तक सब कुछ हाथ के बाहर चला जाता है, और अगले कुछ ही मिनट में विमान हादसे की पूरी आशंका हो जाती है। उस स्थिति में हादसे से बचने के लिए हम कुछ भी नहीं कर सकते। एक दूसरा उदाहरण है अंतिम चरण में कैंसर का पता चलना। इस आलेख के लिखने तक हम सौभाग्यवश कैंसर के तीसरे चरण तक ही पहुंचे हैं।

अगर आप उपरोक्त चार में से कोई सलाह नहीं मान सकते, तो वही करें जो मैं हर सुबह जागने के बाद करता हूं – करुणा ध्यान। वो कम से कम आपकी गरिमा बचाते हुए अवचेतन रूप से चमत्कार कर सकता है। क्योंकि पृथ्वी–जो "निष्पाप" मानी जाती है, (डगलस एडम्स द्वारा, हालांकि मैं कहता हूं कि ये एक ऐसा 'ग्रह है, जहां मानवता स्वयं समेत सभी सजीवों के विनाश की तैयारी में जुटी है') – हमारा इकलौता घर है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

बिमान बसु

न्यूट्रॉन तारें ज्ञात मौजूद तारों में सबसे छोटे और सघन होते हैं। चम्मच भर न्यूट्रॉन तारों का द्रव्यमान लगभग एक बिलियन टन होता है। लेकिन अधिक रोचक तथ्य यह है कि न्यूट्रॉन तारों का विलय भी सोने और प्लैटिनम जैसे भारी तत्वों को बनाता है, जिससे उन्हें अंतरिक्ष में उत्सर्जित कर दिया जाता है। खगोलभौतिकीविदों के अनुसार, न्यूट्रॉन तारों–का एक अकेला विलय चांद के द्रव्यमान का लगभग 20 गुना सोना सृजित कर सकता है।

सोने के ब्रह्मांडीय उद्भव के लिए पार्थिव खोज

न्यूट्रॉन तारे ज्ञात मौजूद सितारों में सबसे छोटे और सघन हैं। चम्मच भर न्यूट्रॉन सितारों का द्रव्यमान लगभग एक बिलियन टन होता है। लेकिन सबसे विलक्षण सत्य यह है कि न्यूट्रॉन सितारों का विलय भी सोने और प्लेटिनम जे भारी तत्वों का सृजन करता है और अंतरिक्ष में फैला देता है। खगोलभौतिकीविदों के अनुसार, दो न्यूट्रॉन सितारों–का एक अकेला विलय चांद के द्रव्यमान का लगभग 20 गुना सोना सृजित कर सकता है।

सोने के प्रति मानव उन्माद जग जाहिर है। पृथ्वी पर सबसे दुर्लभ और बहुमूल्य धातुओं में से एक, सोना पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से मिलने वाले सबसे भारी और स्थायी तत्वों में एक है। अपनी चमक और स्थायित्व के कारण आभूषणों में इसके सामान्य उपयोग के अलावा, सोना अपने भौतिक और रासायनिक गुणों के लिए अविश्वसनीय रूप से बहुमूल्य है।

लेकिन सोने का उद्भव एक रहस्य है। यद्यपि यह अनुमान लगाया गया है कि यह पीली धातु तारकीय अंतस्थ में बनती है, इससे पूरी व्याख्या नहीं मिलती। यह सत्य है कि हमारे सूरज जैसे सितारे हल्के तत्वों को मिलाकर भारी तत्व बनाते हैं, किंतु इससे केवल मुट्ठी भर तत्व ही उत्पन्न होते हैं: हीलियम, कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, और आगे निओन, मैगनीशियम, सिलिकॉन, सल्फर, आयरन, निकिल और कोबाल्ट; ये कोई भी भारी नहीं हैं। अर्थात, नाभिकीय संलयन आज ज्ञात तत्वों के थोड़े से भाग के लिए ही उत्तरदायी है।

लेकिन एक अन्य स्रोत हो सकता है – सुपरनोवा, किसी अत्यंत विशाल सितारे की अंतिम अवस्था। अपने जीवन के अंत में एक प्रभावशाली टाइप-II सुपरनोवा अंत विस्फोट करते हुए इस विशाल सितारे की कोर में धमाका होता है। यह पलायन अभिक्रिया अपने केंद्र में एक न्यूट्रान तारा या एक ब्लैक होल उत्पन्न करती है और बाहरी परतों में एक पलायन संलयन अभिक्रिया होती है, जो सितारे को छितरा देती है। इससे भारी संख्या में मुक्त न्यूट्रॉन भी उत्पन्न होते हैं, और यह उन्हें बहुत तेजी से बनाती है, जिससे सोने जैसे ज्यादा भारी तत्व प्रचुरता में बनना संभव होता है। सुपरनोवा से ब्रह्मांडीय सोना बड़ी मात्रा में मिलता है, लेकिन एक विधि और भी है जो ज्यादा उत्पादनशील है – न्यूट्रॉन तारों का टकराना, जिसे पहली बार अगस्त 2017 में देखा गया।

अगस्त 2017 में, अंतरिक्षयात्रियों ने घोषणा की कि उन्होंने दो न्यूट्रॉन तारों को मिलते हुए, गुरुत्व तरंगें उत्पन्न करते देखा है जिनका यूएस स्थित लेसर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल–वेव ऑब्जर्वेटरी (LIGO) द्वारा पता लगाया गया। इस घटना को एक साथ अनेक विद्युतचुंबकीय तरंगदैर्घ्य–गामा किरणों और एक्स किरणों–में देखा गया। इतिहास में पहली बार, किसी खगोलीय क्रियाविधि को पहले गुरुत्वीय तरंगों द्वारा बाद में टेलीस्कोप द्वारा और देखा गया। लेकिन

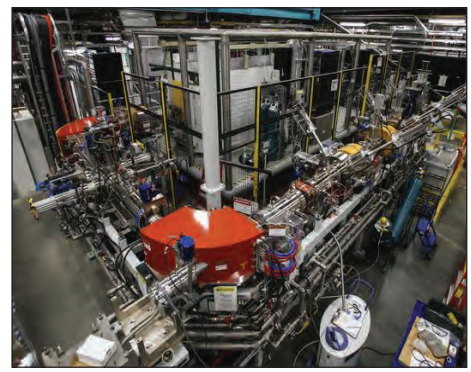

यूएसए में मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी के फेसिलिटी फॉर रेयर आइसोटोप बीम्स (FRIB) पर दो बीम रेखाओं में से एक (श्रेय: मैथ्यू डे स्मिथ/लैनसिंग स्टेट जरनल)

लेखक सीएसआईआर-निस्केयर द्वारा प्रकाशित लोकप्रिय विज्ञान मासिक साइंस रिपोर्टर के पूर्व संपादक हैं। वह 1994 में एनसीएसटीसी के विज्ञान लोकप्रियकरण में राष्ट्रीय विजेता हैं। उन्होंने 45 से अधिक लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें लिखी हैं। ई-मेल: bimanbasu@gmail.com

ज्यादा विलक्षण सत्य यह देखना है कि न्यूट्रॉन तारों ने मिलकर भी सोने और प्लेटिनम जैसे भारी तत्व बनाए और उन्हें अंतरिक्ष में फैला दिया।

न्यूट्रॉन तारे ज्ञात मौजूद सितारों में सबसे छोटे और सघन होते हैं। चम्मच भर न्यूट्रॉन सितारों का द्रव्यमान लगभग एक बिलियन टन होता है। यह जानने के लिए कि किस प्रकार न्यूट्रॉन सितारों के टकराने से भारी तत्व उत्पन्न होते हैं, यूएसए में मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी के नाभिकीय भौतिकीविद एक परमाणु स्मैशर बना रहे हैं – 730 मिलियन डॉलर की फेसिलिटी फॉर रेयर आइसोटोप बीम्स (FRIB) – जो सही सही यह बताएगा कि न्यूट्रॉन तारों के टकराने में ये तत्व कैसे बनते हैं। एफआरआईबी का 500 मीटर लंबा रैखिक त्वरक, लघु–जीवी नए आइसोटोपों के विस्फोट के लिए ग्रेफाइट लक्ष्य को शूट करने के लिए दुर्लभ आइसोटोपों (अल्पायु परमाणु केंद्रक जो पृथ्वी पर आमतौर से नहीं पाए जाते) की प्रबल बीम प्रदान करेगा। शोधकर्ताओं को आशा है कि एफआरआईबी डाटा, यह समझने का मूल सिद्धांत है कि न्यूट्रॉन तारों के विलय से भारी तत्व कैसे बनाते हैं (*साइंस,* 24 नवंबर 2017 | DOI: 10.1126/ science.358.6366.981)A

खगोलभौतिकीविदों के अनुसार, न्यूट्रॉन सितारों–का एक अकेला विलय चांद के द्रव्यमान का लगभग 20 गुना सोना सृजित कर सकता है, जिसका अर्थ है न्यूट्रॉन सितारों–विलयों की अपेक्षा यद्यपि सुपरनोवा हजारों गुना अधिक संख्या में हो सकते हैं, तथापि आवर्त सारणी के उच्चतम सिरे के तत्वों सोना, प्लेटिनम वे टंगस्टन तथा थोरियम और यूरेनियम जैसे रेडियो सक्रिय तत्वों के प्राथमिक स्रोत न्यूट्रॉन–स्टार विलय ही हैं।

गेको अपनी पूंछ फिर से कैसे उगाती है

गेको की कुछ प्रजातियों में, जब वे खतरा महसूस करती हैं, अपनी पूंछ को 'गिराने' की रोचक सुरक्षा प्रक्रिया होती है। संभावित शत्रु को भ्रमित करने के लिए गिरी हुई पूंछ वास्तव में जमीन पर इस तरह कुलबुलाती और फड़कती है जैसे अब भी गेको के शरीर से जुड़ी हो और गेको को दूर जाने का अवसर मिल जाता है जबकि शत्रु के पास केवल पूंछ रह जाती है। पूंछ का गिरना सुरक्षा का एक प्रकार है जिसे स्वविच्छेदन कहते हैं। गेको की पूंछ ऐसा करने के अनुरूप बनी होती है और अंदर विशेष प्रकार के संयोजी ऊतक होते हैं जो वह स्थान बनाते हैं जहां से पूंछ जल्दी से टूट जाती है। अगर गेको अपनी पूंछ गिराती है, पूंछ को जाने वाली रक्त वाहिनियां तुरंत संकुचित हो जाती हैं और रक्त की बहुत कम हानि होती है। गेको 30 दिनों के अंदर नई पूंछ उगाने में सक्षम होती हैं–जो किसी भी अन्य छिपकली से अधिक तेज है।

गेको के इस असामान्य व्यवहार के बारे में रोचक बात यह है कि जीव अपनी पूंछ को, अध्ययन

गेको अपनी पूंछ को पुनर्जनित कर लेती है लेकिन यह अपने मूल रंग से भिन्न दिखती है। (श्रेय: ऑस्केप / UIG / गेती इमेजेज)

के लिए अविश्वसनीय रूप से सरल बनाते हुए, बिना कोई ज्यादा प्रयास किए स्व–विच्छेदित कर सकते हैं। यही है जिसने कनाडा के गुएल्फ विश्वविद्यालय में विकासात्मक जीवविज्ञानी मैथ्यू विकेरिअस को प्रक्रिया का पता लगाने के लिए प्रेरित किया। विकेरिअस की टीम ने गेको की पूछों के एक गुच्छे को वास्तव में पीड़ित करके इस क्रियाविधि का अध्ययन किया और देखा कि कोशिकीय स्तर पर क्या होता है।

यह ज्ञात है कि गेको की पूंछ वास्तव में इसकी रीढ़ रज्जु का विस्तार है। वैज्ञानिक जानते थे कि गेको की पूंछ पुनर्जनित हो सकती है, लेकिन उन्हें यह पता नहीं था कि कौन सी कोशिकाएं इसमें मुख्य भूमिका निभाती हैं। हालांकि, अन्य अंग–पुनर्जनित करने वाली प्रजातियों पर पूर्व शोध के आधार पर, वैज्ञानिकों ने मान लिया कि इसमें किसी प्रकार की स्तंभ कोशिकाएं शामिल होनी चाहिए। स्तंभ कोशिकाएं प्रधान रूप से वे कोशिकाएं होती हैं जो आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में वर्धित हो सकती हैं – जैसे कि त्वचा, पेशी, या हृद कोशिकाएं। शोधकर्ताओं ने खोजा कि पूंछ के स्पाइनल कॉर्ड में विशेष प्रकार की स्तंभ कोशिकाएं होती हैं जिन्हें रेडियल ग्लिया कहते हैं और जो इसके विकास के दौरान न्यूरॉन के प्रमुख स्रोत के रूप में काम करती पाई गई हैं। ये स्तंभ कोशिकाएं सामान्यतया शांत होती हैं, ''लेकिन जब पूंछ अलग हो जाती है तब सब कुछ अस्थायी तौर पर बदल जाता है। कोशिकाएं विभिन्न प्रकार के प्रोटीन बनाती हैं और चोट की प्रतिक्रिया स्वरूप अधिक प्रस्फुटित होने लगती हैं। अंततः, वे एक नया रीढ़ रज्जु बनाती हैं। एक बार जख्म भर जाने पर और रीढ़ रज्जु पुनर्गठित हो जाने के बाद, एक महीने में कोशिकाएं अपनी विप्रामावस्था में आ जाती हैं।''

सबसे रोचक बात उन्होंने यह पाई कि जब पूंछ अलग होती है, जख्म को बंद करने के लिए तेजी से रक्त का थक्का बन जाता है। जब टीम ने जख्म वहां पर त्वचा का टुकड़ा चिपका दिया जहां थक्का बन रहा था, तो पाया कि पूंछ पुनर्जनित नहीं हो पायी। उनका कहना है कि इससे पता चलता है कि खुला घाव स्वयं यह संदेश भेजने में सहायक होता है कि विस्थापन के लिए कुछ चाहिए। अगर आप उस घाव को ढक देते हैं तो ये संदेश भी रुक जाते हैं, जिससे पुनर्जनन की प्रक्रिया रुक जाती है।

अब शोधकर्ताओं के पास यह जानकारी है कि कौन सी कोशिकाएं इस पुनर्जनन को संभव बनाती हैं, वे सोचते हैं कि यह सूचना मानव को स्वयं को ठीक करने के बेहतर तरीके सुझाने में सहायक होगी। उन्हें आशा है कि गेको की पूंछ के रहस्यों की जानकारी मानव में रीढ़ की चोटों को ठीक करने के तरीके ढूंढने में सहायक हो सकेगी।

अरब सागर का गर्म होना भारत में चमक वृष्टि का कारण

भारतीय ग्रीष्म मानसून की भविष्यवाणी करना कठिन होता है। भारतीय मौसम विभाग द्वारा विकसित मानसून की भविष्यवाणी करने वाले मॉडलों में काफी सुधार के बावजूद, अब भी वर्षा के स्थानिक वितरण के बारे में अनिश्चितताएं रहती हैं। भारत में गर्मियों में मानसून की बारिश कुछ हिस्सों में कम समयावधि में अत्यंत भारी वर्षा के स्थानिक आवेग में हाल के वर्षों में एक असाधारण प्रवृत्ति दिखा रही है, जिससे व्यापक बाढ़ और जीवन एवं सम्पत्ति का नुकसान होता है, जबकि कुछ क्षेत्रों में कम वर्षा के कारण सूखा पड़ता है। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रापिकल मीटिओरोलौजी, पुणे; आईआईटी, मुंबई; कोचीन यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, कोच्चि; यूनिवर्सिटी ऑफ मेरीलैंड, यूएसए; और रॉरबोन यूनिवर्सिटीज, फ्रांस के वैज्ञानिकों की एक अंतरराष्ट्रीय टीम द्वारा हाल में किए गए अध्ययन से पता लगा कि मध्य भारत में व्यापक अत्यधिक वर्षा की घटनाओं में 1950 और 2015 के बीच 66 वर्षों की अवधि में तीन गुना वृद्धि हुई है। अध्ययन में उस क्षेत्र में वर्षा में 10–30 प्रतिशत वृद्धि नोट की गई जहां मानसून चक्र के सामान्य तौर पर कमजोर पड़ने के बावजूद एक ही दिन में 150 मिमी वर्षा रजिस्टर की

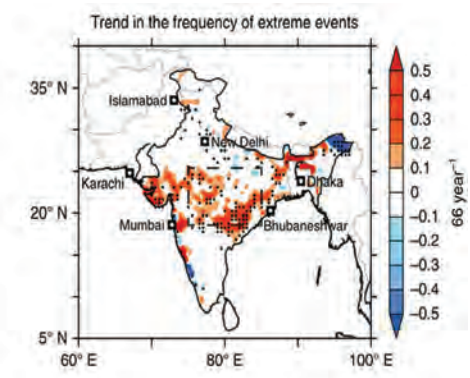

अधिकतर अति वृष्टि की घटनाएं मध्य भारत के बड़े भाग में होती हैं, परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर बाढ़ आती है। (श्रेय: नेचर)

गई ;*नेचर कम्युनिकेशन्स*, 3 अक्तूबर 2017 | DOI: 10.1038/s41467-017-00744-9)।

अध्ययन से पता लगा कि पिछले दशक में प्रति वर्ष बाढ़ के कारण 30 बिलियन डालर से भी अधिक की वैश्विक आर्थिक क्षति हुयी, कुछ बड़ी हानियां एशिया में अत्यधिक वर्षा की घटनाओं से जुड़ी थीं। अकेले भारत में अत्यधिक वर्षा की घटनाओं के कारण बाढ़ से प्रति वर्ष लगभग तीन बिलियन डालर की हानि हुयी, जो वैश्विक आर्थिक क्षति का 10 प्रतिशत है। अध्ययन में देखा गया कि मध्य भारत के मैदान अत्यंत बाढ़ प्रवण हैं जहां अकसर तत्क्षण बाढ़, भूस्खलन और मूसलाधार वर्षा हजारों को मार देती है और लाखों लोगों एवं पशुओं को विस्थापित कर देती है। भारत में 1950–2015 के बीच 268 बाढ़ की घटनाएं अभिलिखित की गई हैं जिसने 825 मिलियन लोगों को प्रभावित किया, 17 मिलियन को बेघर कर दिया और 69,000 लोगों को मार दिया। इनमें से अनेक घटनाएं जिनमें जीवन, सम्पत्ति और कृषि की विशाल क्षति हुई, मध्य भारत में घटीं। दुर्भाग्यवश, अब तक इन घातक घटनाओं की भविष्यवाणी करना संभव नहीं था।

विगत में कुछ अध्ययनों ने बताया कि मध्य भारत में अत्यधिक वर्षा की घटनाओं का बढ़ना, आर्द्रता अंश के बढ़ने के कारण है, संभवतया विषुवतीय हिंद महासागर के तेजी से गर्म होने के कारण। अन्य अध्ययन बताते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप में इन घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति में स्थानिक सतह के गर्म होने और इसी के साथ आर्द्रता स्तरों के बढ़ने की महत्वपूर्ण भूमिका है। आमतौर माना जाता है कि भारी वर्षा के इन आवेगों में से अनेक, बंगाल की खाड़ी में 3–5 दिनों के अंतराल पर विकसित होने वाले, और उत्तर–पूर्व की ओर बढ़ने वाले निम्न दाब तंत्रों (अवदाब और चक्रवात) का परिणाम होते हैं, जो मध्य भारतीय उपमहाद्वीप में नमी लाते हैं।

वर्तमान अध्ययन में वैज्ञानिकों ने पाया कि मानसून चक्र के कमजोर होने और बंगाल की खाड़ी से आर्द्रता का प्रवाह कम होने जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियों के बावजूद, मध्य भारत में व्यापक क्षेत्र में चरम वृष्टि की घटनाओं में तीन गुना वृद्धि हुयी है। उनके अनुसार, इन घटनाओं में वृद्धि का कारण है ''निम्न स्तरीय मानसूनी पछुवा हवाओं की बढ़ती परिवर्तनीयता के कारण आर्द्रता की लहरों का बनना, जिसके कारण संपूर्ण मध्य उपमहाद्वीप में अत्यधिक वर्षा की घटनाएं, होती हैं।'' वैज्ञानिकों के अनुसार, इन घातक मौसमी घटनाओं की एकरूपता और उनके सागर के तापक्रम के साथ संबंध, दो–से–तीन सप्ताह पूर्व इन घटनाओं की भविष्यवाणी की संभावना को रेखांकित करते हैं, जिससे जीवन, कृषि और सम्पत्ति पर इनके प्रलयंकारी प्रभाव को कम करने की आशा बनती है।

अंतरिक्ष से दिखायी देने वाला गंगा डेल्टा का भू भाग

नदियों के डेल्टाओं के जटिल पैटर्न में एक क्रम होता है

अगर हम अंतरिक्ष से लिए गए गंगा डेल्टा के चित्र को देखें, तो हमें यादृच्छिक रूप से फैले चैनलों का चक्रव्यूह जैसा दिखता है। यद्यपि वे यादृच्छिक प्रक्रियाओं द्वारा बनी लगती हैं, तथापि यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, इरवाइन और अमेरिका, स्विट्जरलैंड और इटली के अन्य संस्थानों के वैज्ञानिकों की एक अंतरराष्ट्रीय टीम ने इस आभासी अव्यवस्था में एक क्रम देखा है। क्षेत्र अध्ययनों और गणतीय मॉडलिंग के जरिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि डेल्टा तटरेखा तक तलछट को ले जाने के मार्गों – की संख्या, दिशा और आकार – या विविधता–को बढ़ाने के लिए 'स्व व्यवस्थित' होते हैं, जिससे वे मानवीय गतिरोधों एवं प्राकृतिक कारकों को झेल पाने में सक्षम होते हैं। वैज्ञानिकों ने यह दिखाने के लिए सूचना सिद्धांत की संकल्पनाओं का प्रयोग किया कि ''स्थानिक और संख्यात्मक रूप से उत्पन्न डेल्टा स्वव्यवस्थित होने का पालन करते हैं'' (*प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज*, 16 अक्तूबर 2017 | doi/10.1073/pnas.1708404114)।

नदियों के डेल्टा भूमि–जल अंतराफलक पर विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक संरचनाएं होते हैं जो विश्व की भूमि सतह का केवल एक प्रतिशत घेरे हुए हैं लेकिन वे आधे अरब से अधिक लोगों के घर हैं और बड़ी मात्रा में आहार एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के स्रोत हैं। डेल्टा अत्यंत उपजाऊ क्षेत्र होते हैं जो व्यापक कृषि और एक्वाकल्चर एवं विविध पारिस्थितिक तंत्रों की सहायता करते हैं, और इनमें प्राकृतिक संसाधनों, जैसे, हाइड्रोकार्बन के निक्षेप होते हैं। डेल्टा का जटिल चैनल नेटवर्क सुनिश्चित करता है कि किस प्रकार जल, तलछट, और पोषक तत्व डेल्टा की सतह पर फैले होते हैं। पिछले कुछ दशकों में, विश्व के अनेक डेल्टा जलवायु परिवर्तन, बांध बनाने जैसी मानवीय गतिविधियों और स्थानीय दोहन जैसे अनेक दबावों के कारण खतरे में आ गए हैं। इनका, इन भूभागों पर घातक प्रभाव होता है, इसलिए इन जटिल तंत्रों को समझना तथा बाहरी छेड़–छाड़ के और क्षोभ के प्रति उनकी प्रतिक्रिया को जानना अनिवार्य हो जाता है।

पीएनएएस पेपर के प्रमुख लेखक एलीजेन्ड्रो तेजेडॉर पता लगाना चाहते थे कि ''क्या सभी डेल्टाओं का अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए सागर तक पहुंचने के अपने मार्ग में भूमि निर्माण करने हेतु अपने प्रवाह के प्रसार में विविधता लाने का कुछ साझा 'लक्ष्य' होता है।'' वे सांख्यिकी और गणितीय मॉडलिंग का प्रयोग करके इस पहेली को हल करना चाहते थे। विश्व के 10 प्रमुख नदी डेल्टाओं पर काम करते, शोधकर्ताओं ने प्रमुख प्रवाह के छोटी चैनलों में विभाजित होने और फिर से संगम पर विलय होने की संभावना का पता लगाया और पाया कि अफ्रीका के नाइजर डेल्टा को छोड़ कर सभी डेल्टा विविधता दिखाते हैं। टीम ने इन उपलब्धियों को संख्यात्मक मॉडल से सुनिश्चित किया और दिखाया कि जब प्रमुख चैनलों के मार्ग में परिवर्तन होता है – नेटवर्क का पुनर्संगठन होता है – तो जल और तलछट के प्रवाह को बनाए रखते हुए, प्रवाह भिन्न जल मार्ग पुनर्सृजित करता है।

(अनुवादः डॉ विनीता सिंघल) ■

डॉ. एल. ए. रामदास – भारत में कृषि मौसम विज्ञान के जनक

(पृष्ठ 4 का शेषांश)

डॉ. रामदास ने आईएमडी से 1956 में अवकाश ग्रहण कर नई दिल्ली की नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी में कार्य आरम्भ किया और 1965 में सम्मानित प्रोफेसर बने। इस दौरान उन्होंने वाष्पोत्सर्जन पर काबू पाने की समस्या पर, तथा विशेषकर लम्बी श्रृंखला वाले अल्कोहल के एकल आण्विक फिल्म की स्थिरता पर हवा के प्रभाव का अध्ययन किया। कृषि मौसम विज्ञान में उनके उल्लेखनीय शोध को देखते हुए 1946 में तत्कालीन भारत सरकार ने एम. बी. ई. (मेम्बर ऑफ द ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एम्पायर) पुरस्कार से सम्मानित किया।

कृषि मौसम विज्ञान में महत्त्वपूर्ण योगदान को देखते हुए 1958 में डॉ. रामदास को पद्मश्री से सम्मानित किया गया। वे आई एम डी में पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित होनेवाले पहले व्यक्ति थे। 1 जनवरी 1979 को उनका देहावसान हो गया। 2008 में उनकी याद में एसोसियेशन ऑफ एग्रोमीटियोरोलॉजिस्ट्स ने राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय परिचर्चा के रूप में "डॉ. एल. ए. रामदास मेमोरियल लेक्चर्स" की शुरुआत की, जो अब तक नियमित रूप से आयोजित हो रही है।

(अनुवादः अगस्त्य अरुणाचल) ■